विशेषांक

UPBIL 04831

कार्तिक अंक

मूल्य ₹ 100

संस्कृति पर्व

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

sanskriti parva

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाविद्यालय, चिरगाँव, झांसी

बुंदलेखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से सम्बद्ध

N.C.T.E & U.G.C. से मान्यता प्राप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त महाविद्यालय
शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े
बुन्देलखण्ड में उच्च शिक्षा
के क्षेत्र में तेजी से बदलते रुझानों को
चुनोतियों का सामना करने के लिए गुणवत्ता
पूर्ण शिक्षा, अनुसंधान , प्रशिक्षण को बढ़ावा
देने के लिए
पद्मभूषण राष्ट्रकवि डॉ. मैथिलीशरण गुप्त
की नगरी चिरगांव झाँसी
में प्रगति पथ पर अग्रसर

R.M.S.G. Mahavidyalaya, Main Road Chirgaon ,
Jhansi , (U.P.) - 284301
+91 8317077026, 8052943391, 8840667403
info@rmsgmahavidyalaya.org
http://rmsgmahavidyalaya.org/

डॉ. वैभव गुप्त
(चेयरमैन)

महालक्ष्मी अष्टक

नमस्तेस्तु महामाये श्री पीठे सुर पूजिते!
शंख चक्र गदा हस्ते महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

नमस्तेतु गरुदारुढै कोलासुर भयंकरी!
सर्वपाप हरे देवी महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

सर्वज्ञे सर्व वरदे सर्व दुष्ट भयंकरी!
सर्वदुख हरे देवी महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

सिद्धि बुद्धि प्रदे देवी भक्ति मुक्ति प्रदायनी!
मंत्र मुर्ते सदा देवी महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

आध्यंतरहीते देवी आद्य शक्ति महेश्वरी!
योगजे योग सम्भुते महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

स्थूल सुक्ष्मे महारोद्रे महाशक्ति महोदरे!
महापाप हरे देवी महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

पद्मासन स्थिते देवी परब्रह्म स्वरूपिणी!
परमेशी जगत माता महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

श्वेताम्भर धरे देवी नानालन्कार भुषिते!
जगत स्थिते जगंमाते महालक्ष्मी नमोस्तुते!!

महालक्ष्मी अष्टक स्तोत्रं यः पठेत भक्तिमान्नरः!
सर्वसिद्धि मवाप्नोती राज्यम् प्राप्नोति सर्वदा!!

एक कालम पठेनित्यम महापापविनाशनम!
द्विकालम यः पठेनित्यम धनधान्यम समन्वितः!!

त्रिकालम यः पठेनित्यम महाशत्रुविनाषम!
महालक्ष्मी भवेनित्यम प्रसंनाम वरदाम शुभाम!!

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि देवरी रमन पाण्डेय

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

वर्ष–2 अंक–10

नवम्बर–2019

मुख्य संरक्षक
डॉ० ऋचा मिश्रा
निदेशक, शेखर अस्पताल एवं हिन्द मेडिकल कॉलेज, लखनऊ

संरक्षक मंडल
जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी
(अयोध्या)
प्रो० सभाजीत मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
डॉ० अरुणेश नीरन
(अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष, विश्व भोजपुरी सम्मेलन)
प्रो० रामदेव शुक्ल
(पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय
(अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त
(कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी
(निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे
(कुलपति, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद
(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय, गया, बिहार)
श्री प्रफुल्ल केतकर
(सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय
(सम्पादक, हिन्दुस्तान, बिहार/झारखंड)
प्रो० चितरंजन मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी
(पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह
(पूर्व प्रतिकुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(अध्यक्ष, विश्व भोजपुरी सम्मेलन एवं सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)
डॉ० मृणालिनी चतुर्वेदी
(अध्यक्ष, क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
डॉ० आर. सी. श्रीवास्तव
(अवकाशप्राप्त आई.ए.एस)
राकेश त्रिपाठी
(आई. आर. एस.)
डॉ० योगेश मिश्र
(प्रधान सम्पादक, अपना भारत/न्यूज़ट्रैक, लखनऊ)
श्री मंकेश्वर पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)

सलाहकार परिषद
डॉ० लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
डॉ० ममता त्रिपाठी
(सहायक प्रोफेसर, दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन
(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ० वैभव गुप्त
(वरिष्ठ चिकित्सक, झांसी)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी
(वाराणसी)
डॉ० संजयन त्रिपाठी
(अध्यक्ष, नवल्स शिक्षा समूह, गोरखपुर)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर.सी. मेमोरियल शिक्षा समूह,गोरखपुर)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० राजीव तिवारी
(वरिष्ठ चिकित्सक, नई दिल्ली)
श्री गजेन्द्र प्रियांशु
(कवि एवं साहित्यकार, लखनऊ)
डॉ० गौरी मिश्रा
(कवियित्री, नैनीताल)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
पुष्पांजलि शर्मा
(योगसूत्र स्टूडियो, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री रत्नाकर सिंह
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी
(वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
हसन अब्बास रिज़वी
(वरिष्ठ मीडियाकर्मी एवं लेखक)
श्री मनोज साहू
(लखनऊ)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
श्री मनोज कुमार सिंह
(निदेशक, बालाजी मीडिया नेटवर्क)

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्रा

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

सह-सम्पादक
डॉ० प्रदीप राव
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल

समन्वय सम्पादक
अवनीश पी. एन. शर्मा

सम्पादकीय सलाहकार
मनोज त्रिपाठी

सम्पादक विचार
पुष्कर अवस्थी

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय यादव

सम्पादकीय परिषद
डॉ० किरन लता मिश्र (गोरखपुर)
भागवत शुक्ल (लखनऊ)
आचार्य शिवदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
विनोद शुक्ल (प्रयागराज)
दिवाकर शर्मा (शिवपुरी, मध्यप्रदेश)
प्रो० भारती गोरे (महाराष्ट्र)
शारदा सुमन (नई दिल्ली)
नीलम दीक्षित (मुम्बई)
डॉ० सिंजू पी.वी (कोच्चि)

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
श्री असित के. चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)
श्री अशोक नारायण धर दूबे
(वरिष्ठ अधिवक्ता, गोरखपुर)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

सूचना तकनीक प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एंव प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा लखनऊ प्रेस, बाबूगंज, मेडिकल कॉलेज रोड, लखनऊ, उ० प्र० से मुद्रित एवं बी-64,आवास विकास कालोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेख उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : +91 94508 87186-87, 78600 56665, 98076 36072, 97959 99696

Mail us - editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org

Follow us

अनुक्रमणिका

क्रम सं०.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०.
01.	तमसो मा ज्योतिर्गमय	हृदयनारायण दीक्षित	12
02.	कार्तिक ए सखि पुण्य महीना	मृदुला सिन्हा	14
03.	कृष्णः प्रियो हि कार्तिकः	डॉ० अर्चना तिवारी	17
04.	कृष्ण की उखल बंधन लीला	डॉ० अर्चना अग्रवाल	24
05.	ज्योति की सत्ता के विविध आयाम	कमलेश कमल	30
06.	मनोरथ पूरे करने का महीन	आरती सक्सेना	33
07.	पंचदिवसीय दीपोत्सव	डॉ० सरोज तिवारी	35
08.	अच्छा है एक दीप जलायें	राघवेन्द्र प्रताप मिश्र	46
09.	धन्वन्तरि आयुर्वेद के देव	संजय मानव	48
10.	प्रकृति का पर्व छठ	अजित दूबे	51
11.	अक्षय जीवन के लिये अक्षय नवमी	आचार्य लालमणि तिवारी	56
12.	तुलसी विवाह	सरिता यादव	61
13.	कार्तिक पूर्णिमा	दिवाकर शर्मा	63
14.	सनात का आधार पवमान मंत्र	डॉ० दिनेश उपाध्याय	66
15.	Light For Life	Dr. Rajeev Tiwari	68

पाठकों से

संस्कृति पर्व का कार्तिक विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है। जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इसअंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलीए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

– सम्पादक

आशीर्वाद

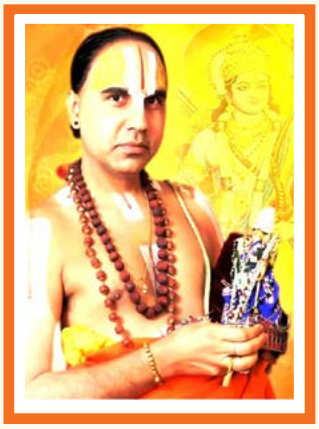

यह परिकल्पना एवं संयोजन अद्भुत है। कार्तिक मास को केंद्रित कर इसके प्रत्येक दिवस की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं लोक उत्सव के पक्ष को रेखांकित करती सामग्री एक साथ किसी पत्रिका में इससे पूर्व देखने या पढ़ने को नहीं मिली। पुण्य मास कार्तिक को केंद्रित कर इस अतिविशिष्ट अंक के संयोजन एवं संपादन के लिए संजय जी को बधाई और आशीर्वाद। संस्कृति पर्व की समस्त संपादकीय परिषद एवं इससे जुड़े लेखकों को भी बधाई। सनातन संस्कृति की आध्यात्मिक यात्रा में कार्तिक एक ऐसा महीना है जहां से मानव जीवन को सामाजिक बनाने की स्वस्थ वैज्ञानिक पद्धति प्राप्त होती है। शिव और शक्ति की आराधना से होते हुए समद्ध जीवन प्राप्त करने की कामना से महालक्ष्मी के पूजन के साथ ही यह यात्रा आगे बढ़ती है। सावन से शुरू आध्यात्मिक यात्रा कार्तिक में विशुद्ध सांस्कृतिक और मागंलिक बन जाती है। इसीलिए कार्तिक को मंगल मास भी कहा जाता है।

भारत संस्कृति न्यास के उपक्रम के रूप में संस्कृति पर्व की यह रचना यात्रा निर्बाध गति से आगे बढ़ती रहे, इसके लिए अनंत आशीर्वाद।

जगद्गुरु रामानुचार्य अनंतश्री विभूषित
स्वामी श्री राघवाचार्य जी महाराज,
श्रीधाममठ, श्रीरामवर्णाश्रम, रामकोट, श्री अयोध्या जी।

भारत वर्ष उत्सव प्रधान देश है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को लोक तक संप्रेषित करने के लिए ही इन उत्सवों की रचना की गई है। मनुष्य अपने जन्म से लेकर महाप्रस्थान तक अपने सभी सुख–दुख इसी उत्सव वाली जीवन यात्रा के साथ रहता है। वह ईश्वर की उपासना से लेकर अपने जीवन के सभी महत्वपूर्ण कार्य उत्सव के रूप में ही सम्पादित करता है। ये उत्सव ही उसकी यात्रा के लिए ऊर्जा प्रदान करते हैं। इन उत्सवों को अपने पर्व, त्यौहारों के साथ समन्वित करते भारतीय समाज के लिए यह वास्तविक आनंद की स्थिति भी होती है।

संस्कृति पर्व का प्रस्तुत अंक जिस महीने को केंद्रित कर समायोजित किया गया है, वह पूरा महीना ही उत्सव एवं अनुष्ठान का है। इसका प्रत्येक दिन अत्यंत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः यह महीना मनुष्य को अध्यात्म से जगत के उत्सव में प्रवेश कराता है। जीवन को संपूर्णता से जीने का भाव जगाता कार्तिक का महात्म्य प्रस्तुत करने वाला यह अंक निश्चय ही अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अंक को संयोजित करने में संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने अथक परिश्रम किया है उसके लिए बधाई।

संस्कृति पर्व का यह विशिष्ट अंक आपके हाथों में है। इस अंक के बारे में आपकी प्रतिक्रिया का स्वागत है। हमें आपके सुझाव, सहयोग एवं दृष्टि दर्शन की प्रतीक्षा रहेगी।

बी के मिश्रा

वैज्ञानिक अनुष्ठान हैं सनातन के पर्व

❝ यदि अपने पर्व त्यौहारों पर गम्भीर चिंतन शुरू किया जाये तो उनके पीछे के विज्ञान को हम अवश्य पा सकते हैं। इसको प्रत्येक वर्ष पड़ने वाले पर्वो की यात्रा से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। भारतीय भूभाग में भारतीय कैलेंडर के चार महीने अद्भुत् हैं। ये महीने हैं - सावन, भादों, क्वार/अश्विन, और कार्तिक। हमारे लगभग सभी प्रमुख पर्व इन्हीं महीनों में पड़ते हैं। सावन की नाग पंचमी से शुरू होकर कार्तिक की पूर्णिमा तक पर्वो का पुंज होता है। ❞

सनातन जीवन संस्कृति औत्सविक है। उत्सव इस संस्कृति के आधार तत्व हैं। ये कभी पर्व के रूप में, कभी त्यौहार के रूप में, कभी साधना के रूप में, कभी आराधना के रूप, में कभी पूजा के रूप में, कभी अनुष्ठान के रूप में और कई बार अनायास प्रतीत होते हुए भी प्रत्येक भारतीय के जीवन में आते रहते हैं। इन उत्सवों का जीवन से अद्भुत् किस्म का संबंध होता है। पश्चिम की दुनिया भारत की औत्सविकता को नहीं समझ पाती है लेकिन वह भारत के इन उत्सवों का प्रतिरूप स्थापित करने की कोशिश अवश्य करती है। उसकी कोशिशों में कोई तारतम्य एवं विज्ञान हो यह जरूरी नहीं। लेकिन भारतीय सनातन संस्कृति के प्रत्येक उत्सव, पर्व, त्यौहार या किसी भी आयोजन को विज्ञान की कसौटी पर कभी भी कसा जा सकता है। यद्यपि भारत में अपने पर्वो, त्यौहारों, या परम्पराओं को लेकर शोध कार्य बहुत कम हुए हैं। दूसरी तरफ पश्चिमी जगत इस समय भारत की सनातनता के तत्वों को समझने की कोशिश में जुटा है। पश्चिम किस तरह भारत को लेकर उत्सुक है इसका पता इस बात से चलता है कि उनके यहां भारतीय सनातन संस्कृति की दान देने की परम्परा को लेकर शोघ कार्य हो रहे हैं। पश्चिमी जगत दान के विज्ञान का पता लगाने में जुटा है। यह अलग बात है कि भारत में कथित शिक्षित और प्रगतिशील लोग दान का जबरदस्त मखौल उड़ाते हैं।

आखिर सनातन संस्कृति के वे कौन से तत्व हैं जिनको लेकर दुनिया बहुत उत्सुक दिखती है। आखिर उन तत्वों पर भारत के भीतर गम्भीर शोध कार्य क्यों नहीं किये जाते हैं। यह प्रश्न अपनी जगह है लेकिन यह भी उतना ही सच है कि सनातन संस्कृति के प्रत्येक आयोजन के पीछे बहुत ही गम्भीर विज्ञान छिपा हुआ है। यदि अपने पर्व त्यौहारों पर गम्भीर चिंतन शुरू किया जाये तो उनके पीछे के विज्ञान को हम अवश्य पा सकते हैं। इसको प्रत्येक वर्ष पड़ने वाले पर्वों की यात्रा से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। भारतीय भूभाग में भारतीय कैलेंडर के चार महीने अद्भुत् हैं। ये महीने हैं - सावन, भादों, क्वार/अश्विन, और कार्तिक। हमारे लगभग सभी प्रमुख पर्व इन्हीं महीनों में पड़ते हैं। सावन की नाग पंचमी से शुरू होकर कार्तिक की पूर्णिमा तक पर्वों का पुंज होता है। इसके बाद भौतिक जीवन के क्रिया कलाप और उनसे जुड़ी गतिविधियों के साथ कुछ उत्सव कुछ पर्व कुछ त्यौहार कुछ अनुष्ठान और कुछ उपासनाओं के दिन आते रहते हैं। यह क्रम वर्ष भर चलता है और उन्हें हम मनाते रहते हैं। सावन को सनातन संस्कृति शिव का महीना मानती है। इस पूरे महीने प्रकृति और ब्रह्माण्ड के बीच एक अलग प्रकार का संबंध बनता है। शिव की उपासना या पूजा में प्रकृति और अंतरिक्ष के तत्व ही मुख्य हैं। हमारे पर्वो की श्रृंखला भगवान शिव के इसी महीने में पड़ने वाली नाग पंचमी से शुरू होती है। यानि शिव पूजा के बाद और साथ सबसे पहली पूजा नाग देवता की होती है। नाग पंचमी के बाद पर्वो का पुंज शुरू होता है जिसमें हरितालिका तीज, जीवित पुत्रिका व्रत पड़ते हैं। सावन बीतते ही सबसे पहले पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रत्येक मनुष्य के पितरों की पूजा के लिये पन्द्रह दिनों को निर्धारित किया गया है जिसको पितृ पक्ष के रूप में हम जानते हैं। इसके बाद नवरात्र शुरू हो जाता है।

अब इस क्रम को समझिये- सृष्टि के संचालन का दायित्व संभाल रहे आदि देव भगवान शिव को पूरे सावन पूजने के बाद सनातन संस्कृति अपने पूर्वजों को याद करती है। उनकी पूजा करती है और उसके बाद नौ दिनों तक शक्ति की साधना का समय होता है। शक्ति साधना यानि नवरात्र के समाप्त होने के ठीक पांच दिन बाद शरद पूर्णिमा पड़ती है। इसके बाद नरक चतुर्दशी, धनतेरस, लक्ष्मी पूजा (यानि दीपावली), अन्न कूट (यानि परुआ) फिर गोवर्धन पूजा, भाई दूज, फिर सूर्य षष्ठी, फिर गोपाष्टमी फिर अक्षय नवमी फिर देवोत्थानी एकादशी और आखिर में कार्तिक पूर्णिमा को कार्तिक मास की विदाई हो जाती है। इसी दिन सनातन संस्कृति में स्थापित चतुर्मास का भी समापन हो जाता है।

अब यह ध्यान देने वाली बात है कि भारत में ये सभी त्यौहार जब शुरू होते हैं तो उनमें भगवान शिव की पूजा के दौरान ही नाग पूजा क्यों की जाती है? अपने पर्व त्यौहारों के गूढ़ वैज्ञानिक रहस्यों को बहुत सलीके से समझने की आवश्यकता है। यहां नाग पंचमी को लेकर एक वैज्ञानिक विवेचन इतना आवश्यक लगता है जिससे अपने पर्वों की वैज्ञानिकता काफी हद तक समझ में आती है। पृथ्वी पर मौजूद समस्त प्राणि जगत को आधुनिक विज्ञान ने अपने ढंग से वर्गीकृत किया है। यह वर्गीकरण कशेरुकी और अकशेरुकी प्राणियों के रूप में यानि कार्डेटा और नानकार्डेटा के रूप में किया गया है। यानि प्राणियों के दो बड़े समूह हैं जिनको उनकी कशेरुकी यानि मेरूदंड के आधार पर विभाजित किया जाता है। समस्त प्राणिजगत में 95 फीसद जीव ऐसे हैं जो अकशेरुकी श्रेणी में आते हैं। शेष 5 प्रतिशत कशेरुकी प्राणियों का अधिकांश समूह जलचर है। एक सरीसृप वर्ग ऐसा है जो उभयचर है और इसी वर्ग से कार्डेट्स समूह की शुरुआत होती है। यानि सर्प प्रथम प्राणि है जो पृथ्वी पर जल से बाहर रहने वाले प्राणियों के समूह में भी रहता है। सावन में सभी ओर पर्याप्त जल होता है। उस महीने में जब सनातन संस्कृति अपने सबसे बड़े देवता भगवान शिव की आराधना कर रही हाती है उसी महीने में वह पंचमी तिथि को कार्डेटा जगत के सबसे प्रथम उभयचर जीव सरीसृप वर्ग के लिये समर्पित करती है। यानि प्राणी जगत का वह प्रथम जीव जो जल से इतर स्थलों में निवास करने वाले प्राणियों के साथ भी निवास करने आता है। यह जीव सर्प होता है। नाग पंचमी की पूजा के हमारे पारम्परिक कारण भी हो सकते हैं। वह आदि देव भगवान शिव के साथ सदैव रहता है। इसलिये भी उसकी पूजा की जाती है। शिव स्वयं प्रकृति हैं और प्रकृति के चिन्ह के रूप में ही शिव के आराधना का विज्ञान है। नाग हमोर लिये देवता हैं। सनातन शास्त्र इस बारे में काफी ज्ञान रखते हैं।

अब क्रम देखिये कि सावन में हमने प्रकृति की पूजा की, फिर पितरों की पूजा की फिर शक्ति की साधना की और महारास की रात से भौतिक जीवन की साधनाओं में लग गये। सबसे पहला काम प्रकृति की शुद्धता और स्वच्छता का होता है। नरक चतुदर्शी से पूर्व तक प्रायः प्रत्येक घर और उसका कोना-कोना बिल्कुल स्वच्छ किया जा चुका होता है। इस स्वच्छता अभियान में हर घर से निकले कूड़े को घूर बनाकर उस पर नरक चतुदर्शी को दीया जलना और जलाना स्वयं में स्वच्छता के विज्ञान का संदेश वाहक है। एक अन्य उदाहरण के रूप में पूर्णिमा को ही लेते हैं। अश्विन माह की शुरुआत से कार्तिक महीने के अंत तक शरद ऋतु रहती है। शरद ऋतु में 2 पूर्णिमा पड़ती है। इनमें अश्विन माह की पूर्णिमा महत्वपूर्ण मानी गई हैं। इसी पूर्णिमा को शरद पूर्णिमा कहा जाता है। इसे कोजगार पूर्णिमा भी कहते हैं वहीं इसके अलावा जागृति पूर्णिमा या कुमार पूर्णिमा के नाम से भी जाना जाता है। पुराणों के अनुसार कुछ रातों का बहुत

“अश्विन माह की शुरुआत से कार्तिक महीने के अंत तक शरद ऋतु रहती है। शरद ऋतु में 2 पूर्णिमा पड़ती है। इनमें अश्विन माह की पूर्णिमा महत्वपूर्ण मानी गई हैं। इसी पूर्णिमा को शरद पूर्णिमा कहा जाता है। इसे कोजगार पूर्णिमा भी कहते हैं वहीं इसके अलावा जागृति पूर्णिमा या कुमार पूर्णिमा के नाम से भी जाना जाता है। पुराणों के अनुसार कुछ रातों का बहुत महत्व है जैसे नवरात्रि, शिवरात्रि और इनके अलावा शरद पूर्णिमा भी शामिल है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार चन्द्रमा को औषधि का देवता माना जाता है। इस दिन चांद अपनी 16 कलाओं से पूरा होकर अमृत की वर्षा करता है।”

महत्व है जैसे नवरात्रि, शिवरात्रि और इनके अलावा शरद पूर्णिमा भी शामिल है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार चन्द्रमा को औषधि का देवता माना जाता है। इस दिन चांद अपनी 16 कलाओं से पूरा होकर अमृत की वर्षा करता है। मान्यताओं से अलग वैज्ञानिकों ने भी इस पूर्णिमा को खास बताया है, जिसके पीछे कई सैद्धांतिक और वैज्ञानिक तथ्य छिपे हुए हैं। इस पूर्णिमा पर चावल और दूध से बनी खीर को चांदनी रात में रखकर ब्रह्म बेला में सेवन किया जाता है। इससे रोग खत्म हो जाते हैं और रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

एक अन्य वैज्ञानिक शोध के अनुसार इस दिन दूध से बने उत्पाद को चांदी के पात्र में सेवन करना चाहिए। चांदी में प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। इससे विषाणु दूर रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम 30 मिनट तक शरद पूर्णिमा का स्नान करना चाहिए। इस दिन बनने वाला वातावरण दमा के रोगियों के लिए विशेषकर लाभकारी माना गया है। एक अध्ययन के अनुसार शरद पूर्णिमा पर औषधियों की स्पंदन क्षमता अधिक होती है। यानी औषधियों का प्रभाव बढ़ जाता है। रसाकर्षण के कारण जब अंदर का पदार्थ सांद्र होने लगता है, तब रिक्तिकाओं से विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। लंकाधिपति रावण शरद पूर्णिमा की रात किरणों को दर्पण के माध्यम से अपनी नाभि पर ग्रहण करता था। इस प्रक्रिया से उसे पुनर्यौवन शक्ति प्राप्त होती थी। चांदनी रात में 10 से मध्यरात्रि तक कम वस्त्रों में चंद्र स्नान कने वाले व्यक्ति को विशेष ऊर्जा प्राप्त होती है। सोमचक्र, नक्षत्रीय चक्र और अश्विन के त्रिकोण के कारण शरद ऋतु से ऊर्जा का संग्रह होता है और बसंत में निग्रह होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार दूध में लैक्टिक अम्ल और अमृत तत्व होता है। यह तत्व किरणों से अधिक मात्रा में शक्ति का शोषण करता है। चावल में स्टार्च होने के कारण यह प्रक्रिया और भी आसान हो जाती है। इसी कारण ऋषि-मुनियों ने शरद पूर्णिमा की रात्रि में खीर खुले आसमान में रखने का विधान किया है और इस खीर का सेवन सेहत के लिए महत्वपूर्ण बताया है। इससे पुनर्यौवन शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। यह परंपरा विशुद्ध विज्ञान है।

तात्पर्य यह कि सनातन संस्कृति के इन पर्वों को विशेष वैज्ञानिक दृष्टि से देखने की आवश्यकता है ताकि इनको केवल सामान्य लोकाचार या परम्परा मानकर समाज इनसे दूर न हो। खासतौर पर भारत की नई पीढ़ी का अपने पर्व त्यौहारों और उत्सवों से जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। यह कितना बड़ा विज्ञान हारे पूवर्जों ने हमें उपलब्ध कराया है जिस पर सभी को गर्व होना चाहिए। यदि केवल कार्तिक महीने को ही लेलें तो यह भौतिक जगत में जीवन के संस्कार के रूप में स्थापित दिखता है। सावन के शिव अश्विन की शक्ति के बाद कार्तिक में समृद्धि की देवी लक्ष्मी की आराधना और आवाहन के साथ मनुष्य नया जीवन शुरू करता है। इस नये जीवन में नये मांगलिक अनुभव, नया अन्न, नया बावग (कृषि) और नये अंकुर के साथ शुरू होने वाली यात्रा शरद के साथ आगे बढ़ती है जो बसंत में ज्ञान की देवी महासरस्वती की उपासना और रंग पर्व होली से होते हुए पुनः सावन की ओर चल देती है।

(संजय तिवारी)

"एक अध्ययन के अनुसार शरद पूर्णिमा पर औषधियों की स्पंदन क्षमता अधिक होती है। यानी औषधियों का प्रभाव बढ़ जाता है। रसाकर्षण के कारण जब अंदर का पदार्थ सांद्र होने लगता है, तब रिक्तिकाओं से विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। लंकाधिपति रावण शरद पूर्णिमा की रात किरणों को दर्पण के माध्यम से अपनी नाभि पर ग्रहण करता था। इस प्रक्रिया से उसे पुनर्यौवन शक्ति प्राप्त होती थी। चांदनी रात में 10 से मध्यरात्रि तक कम वस्त्रों में चंद्र स्नान कने वाले व्यक्ति को विशेष ऊर्जा प्राप्त होती है।"

तमसो मा ज्योतिर्गमय

हृदय नारायण दीक्षित

उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित सनातन संस्कृति के ऐसे अध्येता हैं जिनको सुनना और पढना सभी को आकर्षित करता है । भारतीय जीवन दर्शन और संस्कृति पर उनकी अध्ययन दृष्टि अद्भुत है। प्रस्तुत आलेख श्री दीक्षित की पुस्तक 'मधु अभिलाषा' से लिया गया है ।

प्रकाश को नमस्कार हमारी सांस्कृतिक परम्परा है। छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि ने बताया है कि 'प्रकृति का समस्त सर्वोत्तम प्रकाशरूपा है।' मनुष्य का उत्तम प्रतिभा कहा जाता है। प्रति-भा प्रकाश इकाई है। आभा और प्रभा भी प्रकाशवाची हैं। जहाँ-जहाँ खिलता है प्रकृति का सर्वोत्तम, वहाँ-वहाँप्रकाश। हम धन्य हो जाते हैं। प्रकाश दीप्ति एक विशेष अनुभूति देती है।

प्रकाश सनातन अभीप्सा है। हम भारतीय अनंतकाल से प्रकाशप्रिय हैं। मन प्रश्नाकुल है। आखिरकार प्रकाश ज्योति की अतृप्त अभिलाषा का मूल कारण क्या है? वस्तुतरू यह सम्पूर्ण अस्तित्त्व ही अपने मूल स्वरूप में प्रकाशरूपा है। वह ज्योर्तिएकम् है। हंसोपनिषद् में सम्पूर्ण अस्तित्त्व को एक ऊर्ध्व गतिशील पक्षी के रूपक में समझाया गया है। यह पक्षी हंस जैसा है। अग्नि और सोम इसके दो पंख हैं। समय और अग्नि भुजाएँ हैं।' मंत्र का अंतिम भाग अप्रतिम प्रकाशवाची है। बताते हैं- ''एषो असो परमहंसौ भानुकोटि प्रतीकोशो येनेदं व्याप्तं।'' ;यह परम हंस करोड़ों सूर्यों के तेज जैसा प्रकाशमान है। यह प्रकाश सम्पूर्ण अस्तित्त्व को व्याप्त करता है।द्ध

हम करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से अंगीभूत हैं। भारतीय अनुभूति की यही प्रतीति गीता सहित सभी प्रतिष्ठित ग्रंथों में प्रकाशवान है। गीता में अर्जुन ने विराट रूप देखा। उन्हें भी 'दिव्य सूर्य सहस्त्राणि' की अनुभूति हुई। यजुर्वेद के ऋषि सोम से कहते हैं-''आप ज्योतिरसि विश्वरूपं हैं।''

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि के उदय के पूर्व गहन अंधकार है। रात या दिन हैं नहीं। फिर प्रकाश है। करोड़ों सूर्यों का प्रकाश हमारे पूर्वजों की सनातन अनुभूति है। प्रकाश प्राप्ति की अभिलाषा हमारी प्रकृति है। पूर्वजों ने इसी प्रकृति की अनुभूति की थी। हम पूर्वजों का विस्तार हैं। हम उसी परम्परा में दीप पर्व में प्रकाश दर्शन करते हैं।

मन नहीं अघाता। प्रकाश प्रीति गहरी है। अस्तित्त्व 'ज्योर्तिएकं' है। हम भारतीय सभा गोष्ठी में दिन के सूर्य प्रकाश में भी दीप जलाते हैं। स्वयं के बनाएँ स्वयं के जलाए दीपों को नमस्कार करते हैं। मन तो भी तृप्त नहीं होता। घरों में अब बिजली है। साँझ आती है। विद्युत चालित प्रकाश उपकरण सक्रिय किए जाते हैं। हम उन्हें भी नमस्कार करते हैं। प्रकाश को नमस्कार हमारी सांस्कृतिक परम्परा है। छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि ने बताया है कि 'प्रकृति का समस्त सर्वोत्तम प्रकाशरूपा है।' मनुष्य का उत्तम प्रतिभा कहा जाता है। प्रति-भा प्रकाश इकाई है। आभा और प्रभा भी प्रकाशवाची हैं। जहाँ-जहाँ खिलता है प्रकृति का सर्वोत्तम, वहाँ-वहाँप्रकाश। हम धन्य हो जाते हैं। प्रकाश दीप्ति एक विशेष अनुभूति देती है।

पूर्वजों ने प्रकाश दीप्ति अनुभूति को दिव्यता कहा। जो भारत में दिव्य है, अंग्रेजी में डिव। सूर्य प्रकाश में वही दिवस है। इसी की अन्तःअनुभूति दिव्यता या डिवाइनटी है। इसलिए जहाँ-जहाँ दिव्यता, वहाँ-वहाँ देवता। हम भारतीय सनातन काल से बहुदेव उपासक हैं। क्यों न हों? हमने जहाँ-जहाँ प्रकाश पाया, वहाँ-वहाँ देव पाया और माथा टेका। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्य नमनीय हैं। हमारे पूर्वज सूर्य नमस्कारों से कभी नहीं अघाये। वे सविता देव सहस्त्र आयामी प्रकाश रूपा हैं। चन्द्र किरणें मोहित करती हैं। उनकी

प्रभा दिव्य है। चन्द्र प्रकाश सूर्य प्रकाश का अनुषंगी है लेकिन सूर्य का प्रकाश भी संभवतरू किसी अन्य विराट प्रकाश के स्त्रोत से आता है।

प्रकाश का मूल स्त्रोत रहस्य है। कहाँ से आता है यह प्रकाश? इसका ईंधन क्या है? ईंधन अक्षय नहीं हो सकता। प्रकाश का यह स्त्रोत अजर और पड़ता है। कठोपनिषद् 2-2-15, मुण्डकोपनिषद् व श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक साथ आए एक रम्य मंत्र में उसी विराट प्रकाश का संकेत है-

न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्रतारकम् नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

उस विराट प्रकाश केन्द्र पर सूर्य नहीं चमकता और न ही चन्द्र तारागण। वहाँ विद्युत और अग्नि की दीप्ति भी नहीं है।

आगे बताते हैं-

तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्व मिदं विभाति।।

उसी एक प्रकाश से ये सब प्रकाशित होते हैं। अष्टावक्र ने जनक की सभा में उसे 'ज्योर्तिएकंदृएक ज्योति' कहा था। वह एक ज्योति स्त्रोत सबको प्रकाश दे रहा है। अनंत काल से निकल उसकी प्रकाश ऊर्जा क्षीण नहीं होती। सो ज्योतिमयता हमारी अन्तर्प्रकृति है और जन्म जन्मांतर की प्यास।

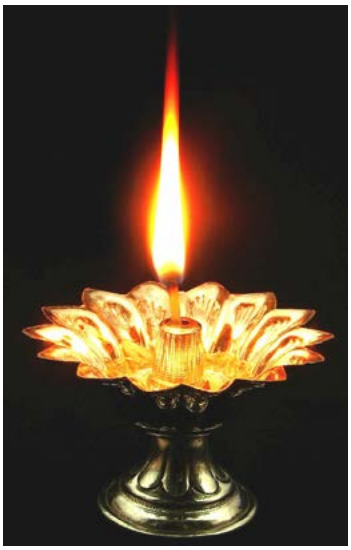

हम सब अंधकार में हैं संभवतरू। तमस गहरा है। अंधकार प्रकाश का अभाव ही नहीं है। अंधकार का भी अपना अस्तित्त्व है। दिवस और रात्रि का मिलन बड़ा प्यारा है। रात्रि रम्य है। दिवस श्रम है, रात्रि विश्रम। दिवस बहिमुखी यात्रा है -स्वयं से दूर की ओर गतिशील। रात्रि दूर से स्वयं की ओर लौटना है। रात्रि आश्वस्ति है। रात्रि का संदेश है-

अब स्वयं को स्वयं के भीतर ले जाओ, बाहर नहीं अन्तर्जगत में।

अपने ही आत्म में करो विश्राम। दिन भर कर्म। कर्मशीलता में थके, टूटे, क्लांत चित्त को विश्राम की प्रशान्त मुहूर्त देती है रात्रि। तमस् हमारे जीवन का भाग है। कोई विकार या विकृति नहीं। इसीलिए हर माह एक रात गहन तमस के हिस्से। अमावस्या हर माह आती है। यही बताने कि तमस् भी संसार सत्य का अंग है। पूर्णिमा की तरह अमावस्या भी प्रकृति की व्यवस्था है। रात्रि को प्रकाशहीन कहा जाता है पर ऐसा है नहीं। रात्रि में चन्द्रप्रकाश होता है। क्रमशरू घटता बढ़ता हुआ। अमावस्या अंधकार से परिपूर्ण रात्रि है। जान पड़ता है कि अमावस ही चन्द्रमा की अवकाश रात्रि है। अमावस का अंधकार उस रात प्रकाश का अभाव मात्र नहीं होता। अमावस की रात्रि में अंधकार होता है अस्तित्त्व रूप में। उस रात की आकाश गंगा खिलते और दीप्ति बरसाते हुए बहती है। सभी तारे और नक्षत्र अपनी पूरी ऊर्जा में प्रकाश देने का प्रयास करते हैं लेकिन अमावस का अंधकार नहीं भेद पाते। जैसे अमावस अपने तमस् से भर देती है जीवन को वैसे ही पूर्णिमा भी। लेकिन तमस् और प्रकाश की यह अनुभूति प्रतिदिन भी उपस्थित होती है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक का काल प्रकाशपूर्ण रहता है और सूर्यास्त से सूर्योदय ऊषाकाल तक तमस् प्रभाव। तमस् और दिवस प्रतिपल भी घटते हैं जीवन में। आलस्य, प्रमाद, निष्क्रियता, निराशा और हताशा के क्षण तमस् काल हैं। उत्साह और उल्लास के क्षण प्रकाश पे्ररणा हैं। हम प्रकाश के अभाव और अंधकार के प्रभाव में स्वाभाविक ही बेचैन होते हैं।

प्रकाश हमारी प्रियतम आकांक्षा है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की स्तुति में तमस हमारी यथास्थिति है और ज्योति हमारी आकांक्षा। पूर्णिमा परिपूर्ण चन्द्र आभा है। शरद् पूर्णिमा का कहना ही क्या? इस रात चन्द्र किरणें धरती तक उतरती हैं अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ। वैदिक ऋषि इसी तरह की सौ पूर्णिमा देखना चाहते थे। 'जीवेम् शरदः शतम्' में सौ शरद चन्द्र देखने की प्यास है। जैसे शरद चन्द्र अपनी पूरी आभा और प्रभा में खिलता है, स्थावर जंगम पर अमृत रस बरसाता है वैसे ही शरद पूनो के ठीक पन्द्रह दिन बाद की अमावस्या अपने समूचे सघन तमस् के साथ गहन अंधकार लाती है। अमावस्या गहन अंधकार है। तब अंधकार को भी अंधकार नहीं दिखाई पड़ता। पूर्वजों ने बहुत सोच समझकर मधुमय वातायन की इस अमावस को भी झकाझक प्रकाश से भर दिया।

शरद् पूर्णिमा प्रकृति प्रदत्त प्रकाश वर्षा है। पूर्वजों ने अमावस को अपने कर्म से प्रकाश पर्व बनाया। शरद् पूर्णिमा की रात रस, गंध, दीप्ति, प्रीति, मधु, ऋत और मधुआनन्द तो पंद्रह दिन बाद झमाझम दीपमालिका। जहाँ-जहाँ तमस् वहाँ-वहाँ प्रकाश-दीप। सूर्य और शरद चन्द्र का प्रकाश प्रकृति की अनुकम्पा है तो दीपोत्सव मनुष्य की कर्मशक्ति का रचा गढ़ा तेजोमय प्रकाश है। प्रकाश ज्ञानदायी और समृद्धिदायी भी है। गजब के द्रष्टा थे हमारे पूर्वज। उन्होंने अमावस की रात्रि को अवनि अम्बर दीपोत्सव सजाये।

भारत इस रात केवल भूगोल नहीं होता, हिन्दू मुसलमान का संधि विच्छेद नहीं होता। यह राज्यों का संघ नहीं होता, इस या उस राजनैतिक दल द्वारा शासित भूखण्ड नहीं होता। भारत अपने कर्मतप के बल पर इस रात 'दिव्य दीपशिखा' हो जाता है। जन-गण-मन पुलक में होती है, आमोद-प्रमोद परिपूर्ण उत्सवधर्मा होता है। वातायन मधुमय होता है। मधुवात में शीत और ताप का प्रेम प्रसंग चलता है। आनन्दी अचम्भा है यह-अमावस की रात प्रकाश पर्व का मुहूर्त घोषित करना। प्रत्यक्ष रूप में शरद् पूनों को ही प्रकाश पर्व जानना चाहिए था।

शरद् पूर्णिमा का प्रकाश अमृत कहा गया है। पूर्वजों ने इस प्रकाश की स्तुतियाँ भी की हैं लेकिन तब गहन तमस् का क्या होता? 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्यास को कर्मतप में बदलने के आह्वान का क्या होता? भारत के लोग प्रकृति की इस अनुकम्पा का नीराजन करते हैं और अमावस को प्रकाश से भरने की सांस्कृतिक कार्रवाई करते हैं। यही दीपपर्व का अन्तस् आनन्द है।

●●●

कार्तिक हे सखि पुण्य महीना

मृदुला सिन्हा

लोक साहित्य में मृदुला सिन्हा का नाम जितना लोकप्रिया है उतनी ही लोकप्रिय उनके साहित्यीक और राजनैतिक यात्रा है । गोवा की राज्यपाल बनने से पूर्व मृदुला जी अपने नाम के अनुरूप लोक के उस मृदुल भाव को प्रस्तुत करने के लिये जानी जाती थीं जिस भाव में सनातन की मांगलिक अवधारणा स्थापित होती है । मृदुला जी का यह आलेख कार्तिक महीने को व्याख्यायित करते वाला ऐसा प्रतीक है जिसके बिना कार्तिक अंक पूरा नहीं होता । यह उनकी सहजता है कि इसके प्रकाशन की अनुमति दे देती है । साप्ताहिक समाचार पत्र 'अपना भारत' के सृजन पृष्ठ पर इस लेख को प्रकाशित करने का मुझे अवसर मिल चुका है । इस बार संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक में प्रस्तुत है महामहिम का वही विशेष आलेख ।

“सावन-भादों की वर्षा और बाढ़ की विभीषिका से लोग तबाह हो जाते हैं। घर गिर जाते हैं। कार्तिक मास में छप्पर छवाने का भी विधान है। पूरा दरवाजा भरना, लीपना-पोतना, नए फूल- पौधे लगाना और लक्ष्मी-पूजा की तैयारी करना। अमावस्या तिथि को आनेवाली दीवाली के एक दिन पूर्व मानो उसका अभ्यास शुरू होता है। दीवाली के पहले दिन यम का दीप निकाला जाता है। एक ही दीप में सात प्रकार के अन्न के दाने और तेल डालकर जलाया जाता है।”

'कार्तिक हे सखी पुण्य महीना सब सखी गंगा स्नान हे,
सब सखि पहिरे राम पाट पटंबर हम धनि लुगरी पुरान।'

मिथिलांचल क्षेत्र में गाए जानेवाले बारहमासा की कुछ पंक्तियाँ हैं। ये पंक्तियाँ कार्तिक मास में विरहिणी नारी के मन का वर्णन करती हैं। परंतु कार्तिक मास की यह पहचान विरहिणी नारी के मन की है। जिनके पिया परदेश हैं, वे नारियों भी कार्तिक मास को पुण्य मास तो मानती हैं, परंतु उनका हृदय इस मास में भी पिया-वियोग में विदीर्ण होता है।

उनकी सभी सखियाँ पाट पटंबर पहन रही हैं, सज-धज रही हैं, लेकिन उनके पास कुछ

नहीं, इसलिए उन्होंने पुरानी फटी-पिटी साड़ी पहनी हैं। उन्होंने सावन, भादों और आश्विन महीने में ऐसे कपड़े पहन लिये, पर कार्तिक मास में उन्हें ये कपड़े मंजूर नहीं।

कार्तिक मास के पूर्व आश्विन मास आता है और इसी के दूसरे पखवाड़े में देवी पूजा प्रारंभ होती है। देवी अर्चना-वंदना से लोगों के मन में बदलाव आना प्रारंभ हो जाता है -

बार अइली हे जगदंबा घर दीयरा
जराय अइली हे जग-तारण घर दीयरा।

जगदंबा के घर में दीया जलाकर मन को संतोष होता है, परंतु दीया जलाते समय ये महिलाएँ देवी की वेशभूषा भी निरखती हैं -

अइली शरण में तोहार हे जग-तारण मैया
लाली कोठलिया के लाले दरवजवा
लाले चौखटवा तोहार हे जग-तारण मैया!
लाले-लाले ओठ पर लाली विराजे
लाले है अभरण तोहार हे जग-तारण मैया
मांगीले अंचरा पसार हे जग-तारण मैया!

देवी के शृंगार का वर्णन करतीं, उसे अपनी आंखों में बैठाती ललनाएँ अपने लिए देवी से सुख-समृद्धि मांगना नहीं भूलतीं। आंचल पसारकर माँगती हैं।

आश्विन मास के बाद कार्तिक मास का प्रारंभ होता है। व्रत-त्यौहारों से भरा है यह माह। गंगा मैया के सेवन के लिए चल पड़ते हैं ग्रामीण लोग। गंगा के घाट पर पूरे मास रहते हैं, गंगास्नान करते हैं। बच्चे के जन्म पर सोहर गाने का रिवाज है। एक सोहर के बोल हैं -

मचिया बैठल सासुजी बालक मुख निरखले
बहूजी कौन-कौन व्रत कइली बालक बड़ा सुंदर।

सास अपने पोते का मुख निरखकर बहू से पूछती है कि उसने कौन-कौन से व्रत किए। गर्भवती औरत की मानसिक स्थिति का सीधा असर बच्चे पर पड़ता है। इसलिए गर्भवती औरत के द्वारा भी व्रत-त्यौहार करने का विधान बनाया गया। बहू का उत्तर है -

कार्तिक मास गंगा नहइली, सूरज गोर लागली हे
सासु व्रत कइली इतवार, बालक बड़ा सुंदर।

कार्तिक मास में गंगास्नान किया। प्रतिदिन सूरज को प्रणाम किया और इतवार का व्रत किया। सोहर की इन पंक्तियों से भी लोक-शिक्षण होता था कि गर्भवती औरत को क्या खाना चाहिए, कैसा व्रत करना चाहिए। निश्चितरूपेण सूर्य की रोशनी गर्भवती औरत के शरीर पर पड़ना आवश्यक है। कार्तिक मास का गंगास्नान भी गर्भवती औरत के स्वास्थ्य के अनुकूल होगा, तभी इस भाव को गीत में पंक्तिबद्ध किया गया।

सावन-भादों की वर्षा और बाढ़ की विभीषिका से लोग तबाह हो जाते हैं। घर गिर जाते हैं। कार्तिक मास में छप्पर छवाने का भी विधान है। पूरा दरवाजा भरना, लीपना-पोतना, नए फूल-पौधे लगाना और लक्ष्मी-पूजा की तैयारी करना। अमावस्या तिथि को आनेवाली दीवाली के एक दिन पूर्व मानो उसका अभ्यास शुरू होता है। दीवाली के पहले दिन यम का दीप निकाला जाता है। एक ही दीप में सात प्रकार के अन्न के दाने और तेल डालकर जलाया जाता है। उसे घर के पीछे कूड़े के ढेर पर जलाया जाता है -

कार्तिक मास सखि आई दिवारी
कर दिवला लेसहिं नर-नारी
मेरी अयोध्या पड़ी अंधियारी
करौं मैं कैसे दिवारी।

राम का वनवास होता हैं। अयोध्या नगरी सूनी हो जाती है। इसलिए लोकगीतों में भी राम के विरह में अयोध्या अंधेरी रहती है -

हमरा राम-लखन दूनू भैया के वन में
के भेजल गे माई,
राम बिना मोर सून्न अयोध्या,
लछमन बिना ठकुराई,
सीता बिना मोर सुन्न रसोइया
के मोर भोजना बनाई।

जब अयोध्या, ठकुराई और रसोई ही सूनी है तो दीवाली का सवाल कहाँ उठता है। पर उनके मन में आशा है राम के अयोध्या लौटने की। इसलिए बड़े विश्वास के साथ वे गाते हैं -

सखियन सब जोहेलीं बाट
कब राम अयोध्या अइहें,
अइहें राम अयोध्या अइहें
सुतल धरती के प्रज्ञा जगइहें।

अयोध्या नगरी के लोगों का यह विश्वास था, आशा थी। राम

अयोध्या आ गए और इसलिए सब सुहावन लग रहा है। दीवाली मन रही है। भोजपुरी लोकगीत की पंक्तियाँ हैं -

दीप सुंदर सुहावन सुंदर लागि हे
एहो दीवाली के दिन है
राजा रामचंद्र अयोध्या अइले
सेहो दिन भइले दीवाली हे
सेहो दिन लक्ष्मी के आगमन
धन-संपत्ति बाढ़ली हे
सेहो दिन पूजा होइली

मिथिलांचल के गाँवों में एक रिवाज था। अमावस्या की शाम को दीवाली जगाई जाती थी और रात्रि होने पर घर की बड़ी-बूढ़ी औरत घर के चारों ओर सूप पीटती हुई घूमती थी। वह बुदबुदाती थी -

दरिद्र सोए, लक्ष्मी जागे,
लक्ष्मी आए, दरिद्र भागे।

इस प्रकार निर्धन-से-निर्धन परिवार द्वारा भी लक्ष्मी को आमंत्रित करने की परंपरा रही है।

द्वितीया को 'भाई दूज' मनाया जाता है। देश के विविध भागों में भाई के ललाट पर टीका लगाकर मिठाई खिलाने का रिवाज है। परंतु मिथिलांचल में विशेष विधि है। इसे 'यम द्वितीया' के रूप में मनाया जाता है। भाई को यम की नज़र से बचाकर उसे दीर्घायु बनाने का व्रत किया जाता है। इस अवसर पर भी मन के भावों को गीतों की पंक्तियों में पिरोकर प्रकट किया जाता है -

कौन भैया चलले अहेरिया
कौन बहिनो देलन आशीष
जीअहू रे मेरो भइया
जीओ भैया लाख बरीसे हो ना
हाथ कमल मुख बीरिया
भौजी के बाढ़ो सिर सिंदूर हो ना।

इसी पखवाड़े में सामा चकेवा खेला जाता है। भाई-बहन का त्यौहार। भाई-बहन के संबंध भाव के विभिन्न रूपों को गीतों में पिरोया जाता है -

कौन भैया के धनी फुलवड़िया हे
कौन बहिनी लोढ़ले बहेली फूल हे
फूलवा लोढ़इते बहिनिया मोर घामल हे
घामी गेल सिर के सिंदूरवा हे
छतवा लेले दौड़ल अबथीन अपन भैया हे
बैठू हे बहिनी एहो शीतल छहिया हे
पनिया लेले दौड़ल अबथीन कनिया भौजी हे
पीव हे ननदी एहो शीतल पनिया हे।
कनिया भौजी के केसिया चौर डोलू हे
वही रे केसे गूंथवो चमेली फूल हे।

कार्तिक मास है, दीपों का उत्सव। इसलिए इस माह में मनाए जानेवाले सभी त्यौहार गीतों में दीप जलाने और उससे संबंधित गीत गाने की परिपाटी है -

कथी केरा दीयरा कथिए सूत-बाती
माई कथी केरा तेलवा जलाएव सारी राती
माई माटी केरा दीयरा पटंबर सूत-बाती
माई सरसों के जलवा जलएबो सारी राती
जले लागल दीयरा हुलसे लागल बाती
खेले लगलन भैया के बहिनी हुलसे भैया की छाती
खेलिय खुलीए गे बहिनी देहू न आशीष
जुगे जीयथ सब भैया लाख हे बरीषे

भाई-बहन के परस्पर प्रेम को दर्शाता यह त्यौहार। 'भाई दूज' त्यौहार के दूसरे दिन से षष्ठी व्रत (छठ पूजा), जो सूर्य-पूजा है, की तैयारी शुरू हो जाती है। इस पूजा में सूर्य देवता से धन-धान्य, पुत्र-पुत्री, नौकर-चाकर - सबकुछ माँगती हैं ललनाएँ। वे गीतों के माध्यम से अपनी आकांक्षा प्रकट करती हैं -

सारी-सारी रात हम जल कष्ट सेवल
सेवल छठी गोरथारी, हे हरि छठी माई
सेवा मैं करबो तोहार हे हरि छठी माई
छठी मां - 'मांगू-मांगू तिरिया जे किछु मांगव
जे किछु हृदय में समाय'
व्रती महिला - 'अगला हल दूनू बरदा मांगीला
पिछला हल हलवाह
गोर धोवन लागी चेरी मांगीले,
दूध पीवन धेनू गाय।
सभा बैठन ला बेटा मांगीले, नूपुर शब्द पुतोह
बैना बंटिला बेटी मांगीले, पढ़ल पंडित दामाद।'
छठी मां - 'एहो तिरिया सब गुण आगर
सब कुछ मांगे समतुल हे।

षष्ठी पूजा के पश्चात् गोपाष्टमी में गौ की पूजा, अक्षय नवमी में आंवला के पेड़ की पूजा, देवउठान एकादशी और माह की अंतिम तिथि पूर्णिमा कार्तिक पूर्णिमा है। कार्तिक पूर्णिमा को गंगास्नान का विधान है। इसके बाद आएगा अगहन मास - मार्गशीर्ष। वर्ष का पहला महीना।

अगहन हे सखि अग्र महीना
चहुँ दिस उपजले धान हे,
चकवा-चकैया राम केल करत हैं
ऐहो देखी जीया हुलसाय हे।

और इस तरह जीवन-चक्र चलता रहता है। ग्यारह माह फिर आएँगे-जाएँगे। परंतु लोक-जीवन में लोक-व्यवहार और लोकगीतों में कार्तिक मास का अपना महत्व रहा है और रहेगा। प्रत्येक दिन एक व्रत, एक त्यौहार का दिन है। परंतु दीपों की महिमा है। ये दीप केवल दीपावली के दिन नहीं, सब दिन जलते हैं। चाहे वह यम द्वितीया, भाई दूज, षष्ठी-पूजन, आँवला-पूजन या गंगास्नान हो। यह मास पुण्य माह जो हैं। ●●●

कृष्णः प्रियो हि कार्तिकः कार्तिकः कृष्ण वल्लभः

डॉ. अर्चना तिवारी

सनातन संस्कृति में भौतिक जीवन का आधार महस कार्तिक है। भगवान् शंकर के यशस्वी पुत्र भगवान् कार्तिकेय के नाम को समर्पित यह महीना भगवान् कृष्ण को अतिप्रिय तो है ही , यह जीव लोक में जीवन के संस्कारों के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। भौतिक जीवन की सबसे आवश्यक जरूरतों के लिए कार्तिक में ही विधान निहित किये गए हैं।यह महारास का महीना है। समृद्धि , ऐश्वर्य एवं संस्कारों के लिए इस पूरे महीने प्रतिदिन कुछ न कुछ अतिरिक्त करने का विधान हमारी संस्कृति में किया गया है। कार्तिक को पुण्य मास भी कहा जाता है।

हमारे शास्त्रों और पुराणों आदि में हर दिवस व मास को मनाए जाने वाले पर्व, उत्सव, व्रत आयोजनों आदि का उल्लेख उनके फलादि के साथ किया गया है। साल के सभी बारह महीनों को किसी-न-किसी देवता के साथ संयुक्त कर उसके महत्व का उल्लेख उनमें किया गया है। जैसे श्रावण मास शिव को समर्पित है, फाल्गुन कामदेव को, उसी तरह पुरुषोत्तम मास विष्णु को और कार्तिक मास कृष्ण को। कार्तिक मास के बारे में, ऐसी मान्यता है कि कृष्ण को वनस्पतियों में तुलसी, पुण्यक्षेत्रों में द्वारिका, तिथियों में एकादशी, प्रियजनों में राधा, महीनों में कार्तिक विशेष प्रिय हैं। इस महीने का प्रारम्भ ही महारास की रात यानी शरदपूर्णिमा से होती है। करवा चौथ, बहुलाष्टमी, गोपाष्टमी, धनतेरस, नरकचतुर्दशी, दीपावली, अन्नकूट, गोबर्धन पूजा, भाई दूज, डाला छठ, तुलसी विवाह, अक्षय नवमी, देवोत्थानी एकादशी और पूर्णिमा स्नान जैसे अतिमहत्वपूर्ण पर्वों का पुंज लिए कार्तिक हर वर्ष आता है और हमारे जीवन को नयी ऊर्जा से संचालित करने का मन्त्र दे जाता है। इसी महीने से सभी प्रकार के मंगल कार्य भी प्रारम्भ हो जाते हैं।

"पद्म पुराण में उल्लेख है कि पूर्व जन्म में आजीवन एकादशी और कार्तिक व्रत का अनुष्ठान करने से ही सत्यभामा को कृष्ण की अर्द्धांगिनी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। व्रत और तप की दृष्टि से कार्तिक मास को परम कल्याणकारी, श्रेष्ठ और दुर्लभ कहा गया है।"

भविष्य पुराण की एक कथा के अनुसार कृष्ण की प्रतीक्षा में राधा कुंज में बैठी थी, कृष्ण की प्रतीक्षा में समय बीत रहा था और राधा की चिंता भी। काफी प्रतीक्षा के बाद कृष्ण आए तब राधा क्रोधित हो उठी और उन्होंने अपना गुस्सा उतारने के लिए कृष्ण को लताओं की रस्सी से बांध दिया पर कृष्ण मंद-मंद मुस्कराते रहे। यह देख राधा शीघ्र ही सामान्य संयत हो गई और कृष्ण से देरी का कारण पूछा। कृष्ण ने बतलाया कि उस दिन कार्तिक में मनाया जाने वाला एक पर्व था और मैया यशोदा ने उन्हें रोक लिया और आयोजन के बाद ही उन्हें आने दिया।

कारण जानकर राधा को अपनी भूल का पछतावा हुआ और कृष्ण से क्षमा मांगने लगी। इस पर कृष्ण ने कहा कि राधा क्षमा मत मांगो मैं तो तुम्हारे साथ बंधा ही हूं और चूंकि आज तुमने प्रत्यक्ष रूप से मुझे बांधा इसलिए यह महीना मुझे विशेष रूप से प्रिय होगा। इस तरह कार्तिक महीने को एक और नाम मिला 'राधा-दामोदर मास।

इसके बारे में एक मान्यता यह है कि इस महीने में राधा रानी का विधिपूर्वक पूजन-अर्चन करने से श्रीकृष्ण अत्यंत प्रसन्न होते हैं और वे सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं क्योंकि राधा को प्रसन्न करने के समस्त उपक्रम कृष्ण को अतिप्रिय होते हैं।

कार्तिक मास एक विशेष मास है जिसमें राधा दामोदर भगवान की उपासना की जाती है। कार्तिक मास की अधिष्ठात्री देवी श्रीमती राधिका है इसलिए ये मास श्रीकृष्ण को प्रिय है। इस मास में अल्प प्रयास द्वारा राधारानी शीघ्र प्रसन्न हो जाती है, अगर व्यक्ति उनकी आराधना उनके प्रियतम दामोदर के साथ करता है। सर्वप्रथम भगवान् की बंधन-लीला अथवा राधा कृष्ण के चित्र को सुंदरता के साथ अपने घर के मन्दिर में अथवा किसी अन्य स्वच्छ स्थान पर विराजमान करें। सायं अपने परिवार के सभी सदस्यों को वहाँ एकत्रित करें। प्रति व्यक्ति एक घी (संभव हो तो देसी गाय का घी उपयोग करें) के दीपक की व्यवस्था रखे। मिटटी के छोटे दीपक ठीक रहेंगें। प्रतिदिन नये दीपक का प्रयोग करें। घी के स्थान पर तिल का तेल भी प्रयोग किया जा सकता है।

अब 'दामोदराष्टकम्' को सभी सदस्य पढ़ने का प्रयास करें। यह मास भगवान को अत्यंत प्रिय है और इस मास में भगवान ने अधिकतम लीलाएँ की है। हमें इस मास में कैसे भक्ति करनी है जिससे अधिक से अधिक फल प्राप्त कर सकें।

भगवान कृष्ण का एक चित्र माता यशोदा और ओखल के संग रख लें।

दामोदराष्टकम (आठ श्लोक की भगवान दामोदर कृष्ण की प्रार्थना है जिसे नित्य कार्तिक में गाना चाहिए) तुलसी महारानी की विशेष पूजा इस माह में होती है। इसलिए तुलसी महारानी का पौधा गमले में लगा लें और गमले को अच्छे से रंगरोगन कर दें।

तुलसी महारानी के पूजन की विधि समझ लें।

मिट्टी के दीपक खरीद लें (कार्तिक में भगवान् कृष्ण के समक्ष मिट्टी के दीप प्रज्वलित करने का विशेष महत्त्व है) और साथ ही रुई की बत्ती, गाय का घी और तिल का तेल भी लेलें। अगर 10 दीप एक बार में प्रज्वलित करने हैं तो 300 दीप ले ले। ब्रह्म मुहूर्त में उठे, स्नान के बाद तुलसी - पूजन (सूर्योदय से पहले) करें और तुलसी महारानी के समक्ष हरे कृष्ण महामंत्र का जप करें।

(पवित्र कार्तिक मास में ब्रह्मा मुहुर्त में स्नान अनिवार्य है)

शाम को स्नान करके सूर्यास्त के बाद भगवान दामोदर के समक्ष दामोदराष्टकम गाते हुए या सुनते हुए दीप प्रज्जलवित करें और साथ ही तुलसी महारानी के समक्ष भी दीप प्रज्जलवित करें। इस महीने किया हुआ हरि नाम जाप, पुण्य, दान, दीप दान कई गुना फल देता है। इसलिए वैष्णव भक्त अपने कृष्ण की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं।

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण की कथा के अनुसार, एक बार कार्तिक महीने में श्रीकृष्ण को राधा से कुंज में मिलने के लिए आने में विलंब हो गया। कहते हैं कि इससे राधा क्रोधित हो गईं। उन्होंने श्रीकृष्ण के पेट को लताओं की रस्सी बनाकर उससे बांध दियां वास्तव में माता यशोदा ने किसी पर्व के कारण कन्हैया को घर से बाहर निकलने नहीं दिया था। जब राधा को वस्तुस्थिति का बोध हुआ, तो वे लज्जित हो गईं। उन्होंने तत्काल क्षमा याचना की और दामोदर श्रीकृष्ण को बंधनमुक्त कर दिया। इसलिए कार्तिक माह 'श्रीराधा-दामोदर मास' भी कहलाता है।

स्कंदपुराण

स्कंद पुराण के अनुसार, कार्तिक के माहात्म्य के बारे में नारायण ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारद को और नारद ने महाराज पृथु को अवगत

कराया था। पद्मपुराण के अनुसार, रात्रि में भगवान विष्णु के समीप जागरण, प्रातः काल स्नान करने, तुलसी की सेवा, उद्यापन और दीपदान ये सभी कार्तिक मास के पांच नियम हैं। इस मास के दौरान विधिपूर्वक स्नान-पूजन, भगवद्कथा श्रवण और संकीर्तन किया जाता है। इस समय वारुण स्नान, यानी जलाशय में स्नान का विशेष महत्व है। तीर्थ-स्नान का भी असीम महत्व है। भक्तगण ब्रज में इस माह के दौरान श्रीराधाकुंड में स्नान और परिक्रमा करते हैं। 'नमो रमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये' मंत्रोच्चार कर तुलसी की पूजा की जाती है। माना जाता है कि दामोदर मास में राधा के विधिपूर्वक पूजन से भगवान श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं, क्योंकि राधा को प्रसन्न करने के सभी उपक्रम भगवान दामोदर को अत्यंत प्रिय हैं।

श्रीदामोदराष्टकम्

नमामीश्वरं सच्चिदानंदरूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यं ततो द्रुत्य गोप्या ।। १ ।।

जिनके कपोलों पर लटकते मकराकृत-कुंडल क्रीड़ा कर रहे हैं, जो गोकुल के चिन्मय धाम में परम शोभायमान हैं, जो दूध की हांडी फोड़ने के कारण माँ यशोदा से भयभीत होकर उखल के उपर से कूदकर अत्यन्त वेग से दौड़ रहे हैं और जिन्हें माँ यशोदा ने उनसे भी अधिक वेग से दौड़कर पकड़ लिया है, ऐसे सच्चिदानंद- स्वरूप सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं
कराम्भोज-युग्मेन सातंकनेत्रं ।
मुहुःश्वास कम्प - त्रिरेखांक - कण्ठ
स्थित ग्रैव - दामोदरं भक्तिबद्धम् ।। २ ।।

जननी के हाथ में लाठी को देखकर मार खाने के भय से जो रोते-रोते बारंबार अपनी दोनों आँखों को अपने हस्तकमल से मसल रहे हैं, जिनके दोनों नेत्र भय से अत्यन्त विह्वल हैं, रूदन के कारण बारंबार साँस लेने के कारण तीन रेखाओं से युक्त शंख रूपी जिनके कंठ में पड़ी मोतियों की माला काँप रही है, और जिनका उदर (माँ यशोदा की वात्सल्य भक्ति द्वारा) रस्सी से बँधा हुआ है, उन सच्चिदानन्द - स्वरूप सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की मैं वंदना करता हूँ।

इतिदृक् स्वलीलाभिरानंद कुण्डे
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ।। ३ ।।

जो इस प्रकार की बाल्य- लीलाओं द्वारा गोकुलवासियों को आनन्द सरोवर में नित्यकाल सराबोर करते रहते हैं, और जो ऐश्वर्यपूर्ण ज्ञानी भक्तों के समक्ष यह उजागर करते हैं कि ₹ मैं केवल ऐश्वर्यविहीन प्रेम और भक्ति द्वारा ही जीता जा सकता हूँ,₹ उन दामोदर श्रीकृष्ण की मैं प्रेमपूर्वक बारम्बार वंदना करता हूँ।

वरं देव ! मोक्षं न मोक्षावधिं वा
न चान्यं वृणेअहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपुर्नाथ गोपाल बालं
सदा मे मनस्याविरस्तां किमन्यैः ।। ४ ।।

हे देव ! आप सब प्रकार से वर देने में पूर्ण सक्षम हैं, तो भी मैं आप से मोक्ष या मोक्ष की चरम सीमारूप वैकुण्ठ आदि लोक भी नहीं चाहता और न ही अन्य कोई (नवधा भक्ति द्वारा प्राप्त किये जाने वाले) वरदान चाहता हूँ। हे नाथ ! मैं तो केवल एक ही वर चाहता हूँ कि आपका यह बालगोपाल रूप मेरे हृदय में सदा - सदा के लिये विराजमान रहे।मुझे अन्य दूसरे वरदानों से कोई प्रयोजन नहीं है।

इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलै-
र्वृतं कुन्तलैः स्निग्ध- रक्तैश्च गोप्या ।
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे
मनस्याविरस्तामलं लक्षलाभैः ।। ५ ।।

हे देव ! कुछ - कुछ लालिमा लिये हुये कोमल तथा घुँघराले बालों से घिरा आपका मुखकमल माँ यशोदा द्वारा बारम्बार चुम्बित है और आपके होंठ बिम्ब फल के समान लाल हैं। आपका यह मधुर

रूप नित्यकाल तक मेरे हृदय में प्रकट होता रहे। मुझे लाखों प्रकार के अन्य लाभों की आवश्यकता नहीं है।

नमो देव दामोदरानन्त विष्णो
प्रसीद प्रभो दुःख जलाब्धि- मग्नम् ।
कृपादृष्टि- वृष्टियातिदीनं बतानु
गृहाणेश मामज्ञमेध्यक्षि दृश्यः ।। ६ ।।

हे परमदेव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे विष्णो ! हे प्रभो ! हे भगवन ! मुझपर प्रसन्न होवें । मैं दुःखों के समुद्र में डूबा जा रहा हूँ।अतएव आप अपनी कृपादृष्टि रूपी अमृतवर्षा कर मुझ दीन - हीन शरणागत पर अनुग्रह कीजिये एवं मेरे नेत्रों के समक्ष साक्षात् दर्शन दीजिये।

कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्येव यद्वत्
त्वयामोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च ।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ
न मोक्षे गृहो मेअस्ति दामोदरेह ।। ७ ।।

हे दामोदर ! जिस प्रकार आपने दामोदर रूप से उखल में बँधे रहकर भी नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुबेर के दोनों पुत्रों को नारदमुनि के शाप से मुक्त करके अपनी भक्ति प्रदान की थी, उसी प्रकार मुझे भी आप अपनी प्रेमभक्ति प्रदान कीजिये।यही मेरा एकमात्र आग्रह है।किसी अन्य प्रकार के मोक्ष की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।

नमस्तेअस्तु दाम्ने स्फुरद्धीप्तिधाम्ने
त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने ।
नमो राधिकायै त्वदीय - प्रियायै
नमोअनंत लीलाय देवाय तुभ्यम् ।। ८ ।।

हे दामोदर ! आपके उदर को बाँधने वाली महान् रस्सी को प्रणाम है, निखिल ब्रह्मतेज के आश्रय और सम्पूर्ण विश्व के आधारस्वरूप आपके उदर को नमस्कार है।आपकी प्रियतमा श्री राधारानी के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है और हे अनन्त लीलाविलास करने वाले भगवन् ! मैं आपको भी सैकड़ों प्रणाम अर्पित करता हूँ।

बहुलाष्टमी

यह श्यामकुण्ड तथा राधा कुण्ड के आविर्भाव का स्मराणोत्सव है। दीपावली पर्वः कार्तिक मास की अमावस्या को मनाया जाता है।

गौ-पूजा तथा गोर्वधन पूजाः दिपावली के पश्चात् मनाया जाता है।

गोपाष्टमीः शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाई जाती है।

उत्थान-द्वादशी

कार्तिक के शक् ल पक्ष को उत्थान द्वादशी मनाई जाती है। रासयात्रा या श्रीकृष्ण का रास-नृत्य कार्तिक की पूर्णिमा की रात्रि को मनाया जाता है।

गोपीगीत

महारास को लेकर श्रीमद्भागवत में बहुत कुछ लिखा गया है। कार्तिक महरास के इस घटनाक्रम को भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख लीलाओं में स्थान मिला है। गोपियों से कृष्ण के आत्मीय सम्बन्ध और उनसे संवाद को शास्त्रों और साहित्य में भी बहुत प्रकार से सम्मान दिया गया है। गोपियों की भावना और वेदना को गोपीगीत के 19 श्लोकों में बहुत ही सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

गोप्य ऊचुः
जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्
त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।। 1।।

गोपियों ने कहाः हे प्रियतम, व्रजभूमि में तुम्हारा जन्म होने से ही यह भूमि अत्याधिक महिमावान हो उठी है और इसलिए इन्दिरा (लक्ष्मी) यहाँ सदैव निवास करती है। केवल तुम्हारे लिए ही तुम्हारी भक्त दासियाँ हम, अपना जीवन पाल रही है। हम तुम्हें सर्वत्र ढूँढती रही है। अतः हमें अपना दर्शन दीजिए।

शरदुदाशये साधुजातसत्
सरसिजोदरश्रीमुष दृशां।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ।। 2

हे प्रेम के स्वामी! आपकी चितवन शरदकालीन जलाश्य के भीतर सुन्दरतम सुनिर्मित कमल के कोश की सुन्दरता को मात देने वाली है। हे वर-दाता! आप उन दासियों वध कर रहे है जिन्होंने बिना मोल ही अपने को आपको स्वतंत्र रूप से अर्पित कर दिया है। क्या यह वध नहीं है?

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारूताद्वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयाद्
ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः।। 3।।

हे पुरूषश्रेष्ठ! आपने बारम्बार हम सब को विविध प्रकार के संकटो से-यथा विषैले जल से, मनुष्यभक्षी भयंकर अधासुर से, मूसलाधार वर्षा से, तृणावर्त से, इन्द्र के अग्नि तुल्य वज्र से, वृषासुर से तथा मय दानव के पुत्र से बचाया हैं।

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान सात्वतां कुले।। 4।।

हे मित्र! आप वास्तव में गोपी यशोदा के पुत्र नहीं अपितु समस्त देहधारियों के हृदयों में अन्तस्थ साक्षी हैं। चूँकि ब्रह्मा ने आपसे अवतरित होने एवं ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की थी, इसिलिए अब आप सात्वत कुल में प्रकट हुए है।

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरूहं कान्त कमादं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।।5।।

हे वृष्णिधूर्य! लक्ष्मीजी के हाथ को पकड़ने वाला आपका कमल सदृश हाथ उन लोगों को अभय दान देता है जो भवसागर के भय से आपके चरणों के निकट पहुँचते है। हे प्रिय! उसी कामना को पूर्ण करने वाले करकमल को हमारे सिरों के उपर रखें।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो
जलरूहाननं चारू दर्शय।। 6।।

हे व्रज के लोगों के कष्टों को विनष्ट करने वाले! समस्त स्त्रियों के वीर! आपकी हँसी आपके भक्तो के मिथ्याभिमान को चूर-चूर करती है। हे मित्र! आप हमें अपनी दासियों के रूप में स्वीकार करें और हमें अपने सुन्दर कलम-मुख का दर्शन दें।

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्।। 7।।

आपके चरणकमल आपके शरणगत समस्त देहधारियों के विगत पापों को नष्ट करने वाले हैं। वे चरण ही गौवों के पीछे-पीछे चरागाहों में चलते हैं और लक्ष्मीजी के दिव्य धाम हैं। चूँकि आपने एक बार उन चरणों को महासर्प कालिया के फनों पर रखा था अतः अब आप न्हें हमारे स्तनों पर रखें और हमारे हृदय की कामवासना को छिन्न-भिन्न कर दें।

मधुरिध्या गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीर्
अधरसीधुनाप्याययस्व नः।। 8।।

हे कमलनेत्र! आपकी मधुर वाणी तथा मोहक शब्द, जो कि बुद्धिमान के मनों को आकृष्ट करने वाले है हम सबों को अधिकाधिक माहे रहे हौ हमारे पिय्र वीर! आप अपने होठों के अमृत से अपनी दासियों को जीवन-दान दीजिए।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः।। 9।।

आपके शब्दों का अमृत तथा आपकी लीलाओं का वर्णन इस भौतिक जगत में कष्ट भोगने वालों के जीवन और पा्रण है। विद्वान मुनियों द्वारा पस्त्र ारित ये कथाएँ मनुष्यों के पापों का समूल नष्ट करती है और सुनने वालों को सौभाग्य प्रदान करती हैं। ये कथाएँ जगत-भर में विस्तीर्ण हैं और आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत हैं। निश्चय ही जो लोग भगवान् के सन्देश का प्रसार करते हैं वे सबसे बड़े दाता है।

प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमंगलम्
रहसि संविदो या हृदि स्पृषः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि।। 10।।

आपकी हँसी, आपकी मधुर प्रेम-भरी चितवन, आपके साथ हमारे द्वारा भोगी गई घनिष्ठ लीलाएँ तथा गपु त वार्ताएँ – इन सबका ध्यान करना मंगलकारी है और ये हमारे हृदयों को स्पर्श करती है। किन्तु उसके साथ, ही हे छलिया! वे हमारे मनों को अतीव क्षुब्ध भी करती है।

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति।। 11।।

हे स्वामी! हे प्रियतम! जब आप गौवें चराने के लिए गाँव छोड़कर जाते है तो हमारे मन इस विचार से विचलित हो उठते हैं कि कमल से भी अधिक सुन्दर आपके पाँवों में अनाज के नोकदार तिनके तथा घास-फूस एवं पौधे चुभ जायेंगे।

दिनपरीक्षये नीलकुन्तलैर्
वनरूहाननं बिभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहूर्
मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि।। 12।।

दिन ढलने पर आप हमें बारम्बार गहरे नीले केश की लटों से ढकें तथा धूल से अच्छी तरह धूसरित अपना कमल-मुख दिखलाते है। इस तरह, हे वीर! आप हमारे मनों में कामवासना जागृत करते हैं।

प्राणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपंकजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।। 13।।

ब्रह्मा द्वारा पूजित आपके चरणकमल उन सबों की इच्छाओं को पूरा करते हैं जो उनमें नतमस्तक होते है। वे पृथ्वी के आभूषण हैं, वे सर्वोच्च सन्तोष के देने वाले हैं और संकट के समय चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। हे प्रियतम! हे चिन्ता के विनाशक! आप उन चरणों को हमारे स्तनों पर रखें।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्।। 14।।

हे वीर! आप अपने होठों के उस अमृत को हममें वितरित कीजिए जो माधुर्य हर्ष को बढ़ाने वाला और शोक को मिटाने वाला है। उसी अमृत का आस्वादन आपकी ध्वनि करती हुई वंशी लेती है और लोगों को अन्य सारी आसक्तियाँ भुलवा देती है।

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटि युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुख च ते
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृषाम्।। 15।।

जब आप दिन के समय जंगल में चले जाते हैं तो क्षण का एक अल्पांश भी हमें युग सरीखा लगता है क्योंकि हम आपको देख नहीं पातीं। और जब हम आपके सुन्दर मुख को, जो घुँघराले वाले से सुशोभित होने के कारण इतना सुन्दर लगता है, देखती हैं तो ये हमारी पलकें हमारे आनन्द में बाधक बनती हैं, जिन्हें मूर्ख स्रष्टा ने बनाया है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्
अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निषि।। 16।।

हे अच्युत! आप भलीभाँती जानते है कि हम क्यों आई है? आप जैसे छलिये के अतिरिक्त भला और कौन होगा जो अर्धरात्रि में अपनी बाँसुरी के तेज संगीत से मोहित होकर उसे देखने के लिए आई तरूणी स्त्रियों का परित्याग करेगा? आपके दर्शनों के लिए ही हमने अपने पतियों, पुत्रों, पूर्वजों, भाईयों तथा अन्य सम्बन्धियों को पूरी तरह ठुकरा दिया है।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदूरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः।। 17।।

जब हम एकान्त में आपके साथ हुई धनिष्ठ वार्ताओं का चिन्तन करती है तो अपने हृदयों में कामोदय अनुभव करती है और आपके हँसोड़ मुख, आपकी प्रेममयी चितवन तथा आपके चैड़े सीने का, जो कि लक्ष्मी का वासस्थान है, स्मरण करती हैं तब हमारे मन बारम्बार मोहित हो जाते हैं। इस तरह हमें आपके लिए अत्यन्त गहन लालसा की अनुभूति होती है।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते
व्रजिनहन्त्र्यलं विष्वमंगलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्।। 18।।

हे प्रिय! आपका सर्वमंगलमय प्राकट्य वज्र के वनों में रहने वालों के कष्ट को दूर करता है। हमारे मन आपके सान्निध्य के लिए लालायित हैं। आप हमें वह थोड़ी-सी औषधि दे दें जो आपके भक्तों के हृदयों के रोग का शमन करती है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेष
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ 19 ॥

हे प्रियतम! आपके चरणकमल इतने कोमल है कि हम उन्हें धीरे से अपने स्तनों पर यह डरते हुए रखती हैं कि आपके पैरों को चोट पहुँचेगी। हमारा जीवन केवल आप पर टिका हुआ है। अतः हमारे मन इस चिन्ता से पूर्ण है कि कहीं आपके कोमल चरणों में जंगल के मार्ग में घूमते समय कंकड़ों से घाव न बन जाये।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥

●●●

श्रीकृष्ण की उखल-बंधन लीला

अर्चना अग्रवाल

उखल-बंधन माखनचोरी की अंतिम लीला है। उखल-बंधन लीला को वात्सल्य-रस का रास कहते हैं। यह लीला कार्तिक मास में हुयी थी जिसे 'दामोदरमास' भी कहते हैं क्योंकि इसी मास में यशोदामाता ने श्रीकृष्ण को रस्सी (दाम) से उदर पर बाँधा था इसीलिए उनका एक नाम 'दामोदर' हुआ।

"यदि कोई मन, वचन, कर्म से अपने कर्तव्य में तन्मय है तो उसको भगवान के पास जाना नहीं पड़ता, भगवान स्वयं उसके पास आ जाते हैं। केवल आते ही नहीं, दूध पीने के लिए रोने भी लगते हैं। निष्काम भगवान के मन में अपने भक्त का दूध पीने की कामना हो जाती है। यही भक्ति की महिमा है। वह अपुत्र को भी पुत्र बना देती है, निष्काम को भी सकाम बना देती है, नित्य तृप्त को अतृप्त बना देती है, निर्मम में भी ममता जगा देती है, शान्त में भी क्रोध उत्पन्न कर देती है, सबके मालिक को भी चोर बना देती है और निर्बन्ध को भी बन्धनों में बाँध देती है।"

उस दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा थी। श्रीकृष्ण दो वर्ष दो मास आठ दिन के हो चुके थे। अभी वे माता का दूध ही रुचिपूर्वक पीते थे। घर की दासियां अन्य कामों में व्यस्त थीं; क्योंकि आज गोकुल में इन्द्रयाग (इन्द्र की पूजा) होना था। यशोदामाता ने निश्चय किया कि आज मैं अपने हाथ से दधि-मन्थन कर स्वादिष्ट माखन निकालूंगी और उसे लाला को मना-मनाकर खिलाऊंगी। जब वह पेट भरकर माखन खा लेगा तो उसे फिर किसी गोपी के घर का माखन खाने की इच्छा नहीं होगी।

यशोदामाता सुबह उठते ही दधि-मन्थन करने लगीं क्योंकि कन्हैया को उठते ही तत्काल का निकाला माखन चाहिए। यशोदामाता शरीर से दधि-मन्थन का सेवाकार्य कर रही हैं, हृदय से श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का स्मरण कर रही हैं और मुख से उनका गान भी करती जा रहीं हैं। अपने प्यारे पुत्र के बाल चरित्र का स्मरण करना उनका नित्य का कर्म है। यशोदामाता भक्तिस्वरूपिणी हैं क्योंकि तन, मन व वचन सभी श्रीकृष्ण की सेवा में लगे हैं। कर्म भी उसके लिए, स्मरण भी उसके लिए और गायन (वचन) भी उसके लिए। सब कुछ कन्हैया के लिए।

दधि-मन्थन करती हुई यशोदाजी के श्रृंगार का बहुत ही सुन्दर वर्णन श्रीशुकदेवजी ने किया है। यशोदामाता अपनी स्थूल कमर में सूत की डोरी से बाँधकर रेशमी लहंगा पहने हुए हैं। रेशमी लहंगा डोरी से कसकर बंधा है अर्थात् उनके जीवन में आलस्य, प्रमाद और असावधानी नहीं है। रेशमी लहंगा इसीलिए पहने हैं कि किसी प्रकार की अपवित्रता रह गयी तो मेरे कन्हैया को कुछ हो जायेगा (सूती वस्त्र की तुलना में रेशमी वस्त्र ज्यादा पवित्र माना जाता है)। दधि-मंथन करते समय उनके हाथों के कंगन व कानों के कर्णफूल हिल रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कंगन आज उन हाथों में रहकर धन्य हो रहे हैं जो हाथ भगवान की सेवा में लगे हैं और कुण्डल यशोदामाता के मुख से भगवान की लीला का गान सुनकर आनन्दमग्न हो कानों की धन्यता की सूचना दे रहे हैं। हाथ वही धन्य हैं जो भगवान की सेवा करें और कान वही धन्य हैं जो भगवान के लीला गुणगान सुनें। यशोदामाता थक गयीं हैं इसलिए उनके मुख पर पसीने की बूंदें झलक रही हैं। उनकी चोटी में गुंथे हुए मालती के पुष्प गिरकर उनके चरणों में पड़े हैं मानो सोच रहे हैं कि ऐसी वात्सल्यमयी मां के सिर पर रहने के हम अधिकारी नहीं हैं; हमें तो उनके चरणों में ही रहना है। पर यशोदाजी को अपने श्रृंगार और शरीर का किंचित भी ख्याल नहीं है।

हर रोज का यह नियम था कि यशोदामाता के मंगलगीत गाने पर ही कन्हैया जागते थे। यशोदामाता बहुत प्रेम से कन्हैया को जगातीं तब कन्हैया जागते थे। लेकिन आज माता की

इच्छा है कि जल्दी से दधि-मन्थन कर माखन निकाल लूं फिर लाला को जगाऊंगी। यशोदामाता दधि मथती जा रही थीं और श्रीकृष्ण की एक-एक लीला का स्मरण करते-करते उनके शरीर में रोमांच हो उठता है, आंखें गीली हो जाती हैं। कन्हैया अभी सो रहे थे। वह कब उठ गये, मैया देख न सकी। भक्त उठकर परिश्रम करे और भगवान आलस्य में सोता रहे—यह संभव नहीं हो सकता। इसलिए श्रीकृष्ण उठे, उठकर अंगड़ाई ली। शय्या पर इधर-उधर लोट-पोट किया और आंखे मलने लगे। फिर वह अपने-आप शय्या से उतरकर आये और मैया के पास आकर 'मा-मा' पुकारकर स्तनपान करने की हठ करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं स्तन्य-काम होकर यशोदामाता

के पास आये।

मन, वचन और कर्म के द्वारा यशोदाजी की स्नेह-साधना ने श्रीकृष्ण को जगा दिया। वे निर्गुण से सगुण, अचल से चल और निष्काम से सकाम हो गये।

यदि कोई मन, वचन, कर्म से अपने कर्तव्य में तन्मय है तो उसको भगवान के पास जाना नहीं पड़ता, भगवान स्वयं उसके पास आ जाते हैं। केवल आते ही नहीं, दूध पीने के लिए रोने भी लगते हैं। निष्काम भगवान के मन में अपने भक्त का दूध पीने की कामना हो जाती है। यही भक्ति की महिमा है। वह अपुत्र को भी पुत्र बना देती है, निष्काम को भी सकाम बना देती है, नित्य तृप्त को अतृप्त बना देती है, निर्मम में भी ममता जगा देती है, शान्त में भी क्रोध उत्पन्न कर देती है, सबके मालिक को भी चोर बना देती है और निर्बन्ध को भी बन्धनों में बाँध देती है।

निद्रा से जागने के बाद तो कन्हैया की शोभा कुछ और ही होती है। बालकृष्ण के बाल रेशम की तरह मुलायम हैं। काले-काले घुंघराले बाल उनके गालों पर आ गये हैं और प्रेमभरी आंखों से वह माता की ओर देख रहे हैं। माता दधि-मन्थन में तल्लीन थी। मैया ने ध्यान नहीं दिया और न ही साधन (दही मथना) छोड़ा। स्तनपान की जिद करते हुए कन्हैया ने दही की मथानी पकड़कर माता को रोक दिया। मानो कह रहे हों–साधन तभी करना चाहिए, जब तक मैं न मिलूं। मैया, अब तो तू मथना छोड़ दे। यह कहकर श्रीकृष्ण अपने-आप माता की गोद में चढ़ गये। यशोदामाता पुत्र को अंक में लेकर अपने हृदय का रस (दूध) पिलाने लगीं। मां-बेटे की आंखें मिली हुईं हैं। परस्पर रस का आदान-प्रदान हो रहा है।

अंकाधिरूढं शिशुगोपगूढं,
स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा,
गोविन्द दामोदर माधवेति।।

अर्थात्–अपनी गोद में बैठकर दूध पीते हुए बालगोपालरूप भगवान लक्ष्मीकान्त को देखकर प्रेम में मग्न हुयी यशोदामाता उन्हें 'ऐ मेरे गोविन्द ! ऐ मेरे दामोदर ! ऐ मेरे माधव !'–इन नामों से बुलाती थीं।

सामने पद्मगंधा गाय का दूध अग्नि पर चढ़ाया था। यह दूध बड़ा विलक्षण है। हजार गायों का दूध सौ गायों को, सौ गायों का दूध दस गायों को और दस गायों का दूध एक पद्मगंधा गाय को पिलाकर उस पद्मगंधा गाय से निकाला हुआ दूध है यह। यही दूध लाला पीता है। यशोदामाता की दृष्टि उफनते हुए दूध पर गयी। मैया ने देखा कि दूध उफनने वाला है; यदि यह दूध उफनकर गिर गया तो कन्हैया क्या पियेगा? स्तनपान तो पीछे भी कराया जा सकता है।

दूध में उफान क्यों आया?–इस की संतों ने बहुत सुन्दर व्याख्या की है। पद्मगंधा गाय के दूध की यह इच्छा थी कि यशोदामाता श्रीकृष्ण को अपना दूध कम पिलावें। कम दूध पिलाने पर लाला को भूख बनी रहेगी तो कन्हैया मुझे पियेगा। इससे मेरा उद्धार हो जायेगा। मैं कन्हैया के होठों का स्पर्श पाने के लिए व्याकुल होकर तप-तपकर मर रहा हूं। किन्तु यशोदामाता कन्हैया को खूब दूध पिलाती हैं अतः मेरा उपयोग कृष्णसेवा में नहीं होगा। इसलिए मेरा जीवन व्यर्थ है। अच्छा होगा कि मैं उनकी आंखों के सामने अग्नि में गिरकर मर जाऊं। दूसरे, दूध ने सोचा परमात्मा के दर्शन से दुख का अंत हो जाता है। मुझे माता की गोद में श्रीकृष्ण के दर्शन हो रहे हैं फिर भी मुझे अग्नि का ताप सहन करना पड़ता है। इससे तो में अग्नि में गिरकर मर जाऊं। इसलिए दूध में उफान आया।

यद्यपि दूध श्रीकृष्ण के लिए ही था, फिर भी स्वयं यशोदामाता का स्तनपान कर रहे श्रीकृष्ण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता था। अगर कुछ उफनकर गिर भी पड़ता तो क्या अनर्थ हो जाता? शेष तो बर्तन में बचा ही रहता। यशोदामाता अतृप्त बालकृष्ण को गोदी से उतारकर दूध सम्भालने चली गयीं। जीव का एक स्वभाव है कि उसे जो मिलता है, उसकी उपेक्षा करता है। माता ने भी यही सोचा कि कन्हैया कहां जाने वाला है? उसे मैं बाद में दूध पिलाऊंगी, पहले इस दूध को अग्नि में गिरने से बचा लूं। यह कहकर मैया ने दूध को अग्नि पर से उतार दिया।

यशोदामाता ने जलते हुए दूध को उतारा–इसका भी एक भाव संतों ने दिया है। माता ने मानो यह कहा कि जो भगवान का नाम ले, वह तर जाता है और उसको भव-ताप नहीं होता। किन्तु तुम भगवान के सामने भगवान के लिए ताप सहन कर रहे हो, यह उचित नहीं है। यह कहकर माता ने उसको उतार दिया अर्थात् तार दिया।

लाला से यह सहन नहीं हो सका। बस, अनर्थ हो गया। मैया उसे अतृप्त छोड़ गयी, इससे उन्हें बड़ा रोष हुआ। पतले-पतले अधर फड़कने लगे। उन्होंने लाल-लाल होंठों को श्वेत दूध की दँतुलियों से दबा दिया। दांत श्वेत हैं, सत्त्वगुणी हैं, अधर लाल हैं, रजोगुणी हैं। मानो सत्वगुण रजोगुण पर शासन कर रहा हो। नेत्रों में अश्रु आ गये। श्रीकृष्ण अपने भक्तजनों के प्रति अपनी ममता प्रकट करने के लिए क्या-क्या भाव नहीं अपनाते? ये काम, क्रोध, लोभ और दम्भ भी आज ब्रह्म-संस्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गये। श्रीकृष्ण को पहले काम (भूख) आया। काम के बाद गोद में आ गये और दूध पीकर भोक्ता हो गये और भोक्ता होने के बाद लोभ के कारण अतृप्त हो गये और फिर क्रोध आ गया। वह क्रोध उतरा दधिमन्थन के मटके पर। पास पड़ा एक चटनी पीसने का पत्थर दही के मटके पर दे मारा। उससे दही भरी मटकी फूट गई। संसार की आसक्ति ही मटकी है। भगवान में आसक्ति ही भक्ति है। मनुष्य जब यह सोचता है कि अपने संसार को ठीक करके भक्ति करुंगा तो यह गलत है। भगवान संसार की आसक्ति रूपी मटकी को ही फोड़ देते हैं।

इतना करके कन्हैया वहां से खिसक गये। गोरस रखने वाले घर का द्वार खुला था। वे वहां जाकर एक दिन पहले का निकला बासी माखन खाने लगे। पास ही एक उखल उल्टा रखा था। कन्हैया ने सोचा कि यदि बच्चे को माता अपनी गोद में नहीं बैठायेगी तो वह कहां जायेगा? वह खल के पास जाकर उसकी संगति करेगा। ऐसा सोचकर कन्हैया उस उखल पर चढ़ गये। एक मोटा-सा बंदर कहीं से कूद कर आ गया। कन्हैया की और बंदरों की तो नित्य मैत्री है।

भगवान को यह बात याद आई कि ये मेरे रामावतार के भक्त हैं। उस समय तो मैं इन्हें कुछ खिला न सका। ये सब पेड़ के पत्ते खाकर मेरे लिए युद्ध करते थे। इसलिए वे कृष्णावतार में छीके पर धरे पात्र में से निकाल-निकालकर बंदर को माखन खिलाने लगे। बीच-बीच में चौंकन्ने होकर द्वार की ओर देखते जाते थे कि मैया आ तो नहीं रही है। श्रीकृष्ण सामने देख रहे हैं, परन्तु तिरछी आंखों से पीछे का भी सब देखते जा रहे थे। आज श्रीकृष्ण के नेत्र 'चौर्य विशंकित' हैं।

मैया दूध उतारकर लौटी तो देखती है कि दहेड़ी के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। उन्होंने दूध-दही के पात्र फोड़ दिये, वहां पर दूध-दही फैलने से समुद्र सा हो गया। पूरा घर दधिसागर बन गया है जैसे आदिदेव नारायण क्षीरसागर में विहार करते हैं, उसी प्रकार कन्हैया भी विहार करने लगे और यह सब करके उनका लड़ैता कहीं खिसक गया है। मैया को हंसी आ गयी। फिर उसने सोचा, ऐसे तो बालक बिगड़ जायेगा। माता ने लाला को दूध पिलाने की जगह दण्ड देने का विचार किया। अतः एक छड़ी लेकर श्रीकृष्ण को धमकाने चलीं। दही में सने कन्हैया के चरणचिह्न उनका पता अपने-आप बता रहे थे। कन्हैया ने मैया को छड़ी लेकर अपनी ओर आते देखा तो उखल से उतर कर आँगन में भागे। चंचल कन्हाई के पीछे दौड़ रही थी मैया। बड़े-बड़े योगी तपस्या के द्वारा अपने मन को अत्यन्त सूक्ष्म व शुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, उन्हीं भगवान को पकड़ने के लिए यशोदाजी पीछे-पीछे दौड़ीं। किन्तु श्रीकृष्ण हाथ नहीं आते।

यशोदामाता के स्थूल शरीर का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं–उनके नितम्ब बड़े-बड़े हैं, कमर पतली है और उनकी वेणी में फूल गुंथे हुए हैं। जब मैया ने भागते हुए श्रीकृष्ण का पीछा किया तब उनके नितम्बों ने अपने भार से उनकी गति में अवरोध उत्पन्न कर दिया। पतली कमर ने कहा कि मैया अधिक दौड़ोगी तो मैं टूट जाऊंगी और चोटी के फूलों ने भी धरती पर गिरकर माता का साथ छोड़ दिया। उनके केश खुल गये थे, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, मुख पर पसीना आ रहा था। किन्तु वह आज अपने लाला को पकड़कर रहेंगी।

जसुमति रिस करि-करि रजु करषै।
सुत हित क्रोध देखि माता कैं,
मनहिं मन हरि हरषै।।
उफनत छीर जननि करि ब्याकुल,
इहिं बिधि भुजा छुड़ायौ।

भाजन फोरि दही सब डारयौ,
माखन कीच मचायौ।।
लै आई जेंवरि अब बाँधौं,
गरब जानि न बँधायौ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं,
पुनि-पुनि और मँगायौ।।

नारद-साप भए जमलार्जुन,
तिनकौं अब जु उधारौं।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित
जनम-जनम तनु धारौं।। (सूरसागर)

कन्हैया हाथ नहीं आता

संतों ने इसके कई कारण बतलाये हैं–यशोदाजी हाथ में छड़ी लेकर श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए दौड़ रही हैं। छड़ी अर्थात् अभिमान। यशोदाजी में एक सूक्ष्म अभिमान है कि कन्हैया मेरा बेटा है, मैं उसकी माता हूं। यशोदामाता दौड़ते-दौड़ते थक गयीं हैं पर श्रीकृष्ण हाथ में नहीं आते। अतः श्रीकृष्ण को पकड़ना हो तो अभिमान छोड़ना होगा।

यशोदामाता की यह भूल है कि वह श्रीकृष्ण की पीठ पर नजर रखकर दौड़ती हैं। भगवान की पीठ में अधर्म है और उनके हृदय में धर्म है। ईश्वर को वही पकड़ सकता है जो उनके चरण या मुखारबिन्द पर नजर रखकर दौड़ता है। पुत्र को डरा देखकर मां का वात्सल्य-स्नेह उमड़ आया और उन्होंने छड़ी दूर फेंक दी। मैया यह समझ जाती है कि मेरे छड़ी फेंकने से लाला को यह विश्वास हो गया है कि अब माता मुझे मारेगी नहीं। इसलिए कन्हैया पास आकर खड़े हो गये। जब तक जीव हाथ में जड़ (छड़ी) को पकड़े रहेगा तब तक चेतन (श्रीकृष्ण) पकड़ में नहीं आयेगा। अतः मैया ने जब जड़ को फेंक दिया तो श्रीकृष्णरूप परमब्रह्म परमात्मा उनके पास आकर खड़े हो गये। कन्हैया ने कहा–मैया मैं तो तेरा अभिमान उतर जाने के कारण तेरे पास आया हूं।

कन्हैया को डांटते हुए यशोदामाता ने कहा–'अरे वानरबन्धो ! चंचलप्रकृते ! मन्थनीस्फोटक ! तू बहुत ऊधमी हो गया है। अब तुझे माखन कहां से मिलेगा? ठहर, आज मैं तुझे बिल्कुल छोड़ने वाली नहीं हूं। तूने जिस ओखली पर चढ़कर चोरी की है उसी से आज तुझे बांधे देती हूँ।' यशोदामाता ने सोचा कि उखल भी चोर है; क्योंकि माखनचोरी करते समय इसने श्रीकृष्ण की सहायता की थी। चोर का साथी चोर। इसलिए दोनों बंधन के योग्य हैं। यह उखल भी कृष्ण के साथ बंधकर दूसरों (नलकूबर और मणीग्रीव) के उद्धार में समर्थ हो गया।

श्रीकृष्ण मां के सामने अपराधी बनकर खड़े हैं, जोर-जोर से रो रहे हैं, आंखों को मल रहे हैं, काजल मिली आंसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें उनके कपोलों पर गिरने लगीं हैं, ऊपर-नीचे देख रहे हैं और उनके नेत्र भय से विह्वल हो गये हैं। माता यशोदा और श्रीकृष्ण का यह अद्भुत रूप वेदों और उपनिषदों में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलने वाला। ऐसा दृश्य तो केवल प्रेम की भूमि व्रज में ही संभव है।

मैया ने सोचा–आज सुबह से इसे खिजाया है, डांटा है। अब पता नहीं कहां भाग जाय। इसलिए थोड़ी देर तक बाँधकर रख लूं। दूसरा दही मथकर माखन निकाल लूं तब खोलकर मना लूंगी। यही सोच-विचारकर माता ने बांधने का निश्चय किया। बांधने में भी माता का वात्सल्य ही था। लेकिन मैया के इस सौभाग्य और कन्हैया के इस भक्तवात्सल्य का स्मरण देवी कुन्ती को कभी भूलता नहीं। महाभारत का युद्ध हो जाने पर जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से द्वारिका लौट रहे थे, तब वे स्तुति करती हुई कहती हैं–

'जब बचपन में आपने दूध की मटकी फोड़कर यशोदामाता को खिझा दिया था और उन्होंने आपको बांधने के लिए रस्सी हाथ में

ली थी, तब आपकी आंखों में आंसू झलक आये थे। कपोलों पर काजल बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भय की भावना से आपने अपने मुख को नीचे की ओर झुका लिया था। आपकी उस लीला छवि का ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूं। जिससे भय भी भय मानता है उसकी यह दशा।' (श्रीमद्भागवत १।८।३१)

मैया ने रस्सी ली और बांधने लगी। रस्सी दो अंगुल छोटी हो गयी। संतों ने इसका एक बहुत ही सुन्दर भाव बताया है—जो ब्रह्मस्पर्श करता है उसका स्वभाव सुधरता है। श्रीकृष्ण के कोमल शरीर का स्पर्श करते ही डोरी में दया आ गई। डोरी सोचती है कि कन्हैया अत्यन्त कोमल है, उसे बाँधने पर कष्ट होगा। आज डोरी भगवान का स्पर्श करती है तो दयावश दो अंगुल छोटी हो जाती है। हर बार दो अंगुल की ही कमी होती है, न तीन की, न चार की, न एक की। यह कैसा अलौकिक चमत्कार है।

रस्सी दो अंगुल ही छोटी क्यों पड़ती है

जब भक्त अहंकार करता है कि मैं भगवान को बांध लूंगा, तब वह उनसे एक अंगुल दूर हो जाता है और भक्त के अहं को देखकर भगवान भी एक अंगुल दूर हो जाते हैं। एक अंगुल यशोदाजी का अहं और एक अंगुल श्रीकृष्ण की दूरी, दोनों से दो अंगुल की कमी पड़ती गयी।

भगवान को दो वृक्षों—यमलार्जुन (नलकूबर-मणिग्रीव) का उद्धार करना है। यह दिखाने के लिए रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गयी। जहां नाम-रूप होते हैं, वही बन्धन होता है। परन्तु परम ब्रह्म श्रीकृष्ण में ये दोनों नहीं है। दो अंगुल की कमी से यही बोध होता है।

माता उस रस्सी के साथ दूसरी रस्सी जोड़ती हैं और श्रीकृष्ण को बांधने का प्रयास करती है; किन्तु यह डोरी भी दो अंगुल छोटी पड़ती है। तीसरी जोड़ी, चौथी जोड़ी, पांचवीं जोड़ी; एक-पर-एक रस्सियां जोड़ती चली गयी; किन्तु वह दो अँगुल का अन्तर न घटा। मैया आश्चर्यचकित रह गयी। उसके पुत्र की मुट्ठी भर की कमर तो मोटी हुयी नहीं। कन्हैया की कमर में पड़ी करधनी ज्यों-की-त्यों है, फिर इतनी रस्सियां क्यों पूरी नहीं पड़ती? यशोदाजी के हाथों कन्हैया को न बंधते देखकर पास-पड़ोस की गोपियां इकट्ठी हो गयीं। गोपियां हंस रही हैं। वे कहती हैं—'ब्रजरानी ! लाला की कमर तो मुट्ठी भर की ही है और छोटी-सी किंकणी इसमें रुनझुन कर रही है। अब यह नटखट इतनी रस्सियों से नहीं बँधता तो जान पड़ता है कि इसके भाग्य में विधाता ने बन्धन लिखा ही नहीं है। यह हम सब को बंधन से छुड़ाने आया है। कितना भाग्यशाली है तेरा बेटा। गुस्सा छोड़ और खुश हो जा।' यह सुनकर कन्हैया धीरे-धीरे मन-ही-मन हंसने लगा। मैया ने सोचा कि यदि आज वह कन्हैया को छोड़ दे तो वह फिर कभी बात नहीं मानेगा और न ही मुझसे डरेगा। बच्चे को बिगड़ने देना तो ठीक नहीं है। मैया तो अड़ गयी है, कुछ भी हो वह आज कन्हैया को बांधकर रहेगी, चाहे सन्ध्या हो जाय और गांव भर की रस्सी क्यों न इकट्ठी करनी पड़े।

इसका भाव भी संतों ने इस प्रकार बतलाया है—श्रीकृष्ण के साथ उनकी सेवा में सदैव ऐश्वर्य शक्ति रहती है। यहां ऐश्वर्य शक्ति और वात्सल्य भक्ति में झगड़ा शुरु हो गया है। यशोदाजी में वात्सल्य भाव

है। इसलिए वे कहती हैं कि यह मेरा बेटा है। इसे चोरी की आदत पड़ गयी है। इसकी आदत मैं नहीं सुधारुंगी तो कौन सुधारेगा? ऐश्वर्य शक्ति कहती है कि यह मेरा स्वामी है। मेरे स्वामी को कोई बांधे, तो मुझसे सहन नहीं होगा। मैं देखती हूं कि ये इसे कैसे बांधती हैं। ऐश्वर्य शक्ति डोरी में प्रवेशकर उसे छोटा कर देती है। भगवान की ऐश्वर्य शक्ति नहीं चाहती कि उसके स्वामी प्राकृत रज्जु से बंध जायँ।

श्रीकृष्ण ने देखा कि मैया बांधना ही चाहती है पर वह थक गयी है। उसका सारा शरीर पसीने से भीग गया है। उसके केशों में लगे फूल बिखर गये हैं। श्रुति कहती है–'मातृदेवो भव'। माता सबसे बड़ी है, अतः उसको थकाना उचित नहीं है। मैं गोकुल का दुःख दूर करने के लिए प्रकट हुआ और माता का दुःख दूर न करूँ, तो यह क्या ठीक होगा? सौभाग्यदान के लिए आया हूँ और माता के अलंकारों का ही तिरस्कार कर दूँ? जो भक्तों को भी दुःखी नहीं देख सकते, वे अपनी माता को दुःखी कैसे देख सकते हैं?

यही स्वर्णिम क्षण होता है जब साधक साधन-श्रम की सीमा पर पहुंच जाता है, जब चलने वाले के चरण थक जाते हैं और जब वह पूर्णतः थक जाता है, तब भगवान की कृपा जाग उठती है। भगवान श्रीकृष्ण इतने कोमल हृदय हैं कि अपने भक्त के प्रेम को पुष्ट करने वाला परिश्रम भी सहन नहीं करते हैं। वे अपने भक्त को परिश्रम से मुक्त करने के लिए स्वयं ही बंधन स्वीकार कर लेते हैं। यशोदाजी का हठ देखकर भगवान ने अपना हठ छोड़ दिया; क्योंकि जहां भगवान और भक्त के हठ में विरोध होता है, वहां भक्त का ही हठ पूरा होता है। भगवान बंधते हैं तब, जब भक्त की थकान देखकर कृपापरवश हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण ने ऐश्वर्य शक्ति से कहा कि मेरी माता मुझे बांधना चाहती है तो तू डोरी को क्यों छोटा कर देती है? इस समय मैं तेरा स्वामी नहीं हूँ, बल्कि यशोदामाता का पुत्र हूं। मैं प्रेमरस लेने और प्रेमरस देने के लिए पुत्र बन कर आया हूँ। प्रभु ने संकेत कर दिया कि मैं मधुरमयी बाललीला के लिए व्रज में आया हूँ। यहां वात्सल्य का प्रभाव अधिक है, इसमें तुम बाधक मत बनो। तुम द्वारिका चली जाओ। जब मैं द्वारिका आऊंगा तब तुम्हारा मालिक बन कर आऊंगा। दयामय स्वयं बंध जाते हैं मां के प्रेमपाश में। ऐश्वर्य शक्ति हट गयी, श्रीहरि बंध गये। मैया की रस्सी पूरी हो गयी थी और विश्व को मुक्ति देने वाला स्वयं बंधा खड़ा था उखल से। भगवान न बंधने की लीला करते रहे और अंत में बंध गये किन्तु उनका बन्धन भी दूसरों की मुक्ति के लिए था। इस प्रकार बंधकर उन्होंने संसार को यह बात दिखला दी कि मैं अपने प्रेमी भक्तों के अधीन हूँ।

आत्माराम होने पर भी भूख लगना, पूर्णकाम होने पर भी अतृप्त रहना, सत्त्वस्वरूप होने पर भी क्रोध करना, लक्ष्मी से युक्त होने पर भी चोरी करना, यमराज को भी भय देने वाले होने पर डरना और भागना, मन से तीव्र गति वाले होने पर भी माता के हाथों पकड़े जाना, आनन्दमय होने पर भी रोना व दुःखी होना, सर्वव्यापक होने पर भी बंध जाना–ये सब भगवान भक्तों के वश में होकर ही करते हैं। व्रजवासियों ने यशोदामाता को ही दोषी बताया। गोपियों ने देखा कि ब्रजेश्वरी (यशोदाजी) आज उनकी अनुनय-विनय पर ध्यान ही नहीं देती तो वे खीझकर अपने घरों को चली गयीं।

उखल -बंधन लीला का रहस्य

भगवान श्रीकृष्ण की अनन्त लीलाओं में ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त उखल बन्धन लीला अत्यन्त शिक्षाप्रद है। कृष्णोपनिषद् के अनुसार जिस प्रकार भगवान के आभूषण, वस्त्र, आयुध सभी दिव्य और चिन्मय हैं; उसी प्रकार भगवान की लीला में भी उखल , रस्सी, बेंत, वंशी तथा श्रृंगार आदि सब वस्तुएं देवरूप बतायी गयी हैं। इसी भाव को दर्शाने के लिए उखल , रस्सी आदि का स्वरूप इस प्रकार बताया है–जो मरीचिपुत्र प्रजापति कश्यप हैं, वे नन्दगृह में उखल बन गये। उसी प्रकार जितनी भी रस्सियां हैं, वे सब देवमाता अदिति के स्वरूप हैं। यशोदाजी ने पकड़कर प्रभु को उखल में रस्सियों से बांध दिया और प्रभु का नाम 'दामोदर' पड़ा। भगवान अपनी इच्छा से पितृरूप उखल में मातृरूप रस्सियों से माता यशोदा के वात्सल्यवश बन्धन में आ गये। यह उनकी कृपा थी। यह है माधुर्यस्वरूप। ऐश्वर्यभाव है कि बन्धन के समय रस्सी का दो अंगुल छोटा पड़ना। इस लीला से प्रभु ने जगत को शिक्षा प्रदान की कि वासना या इच्छा की पूर्ति न होने पर व्यक्ति को क्रोध आता है, क्रोध से वह अपराध करता है और उस अपराध का उसे बन्धन आदि दण्ड मिलता है। अतः वासना या कामना को छोड़कर संयम से ही सुख और भगवत्-प्राप्ति सम्भव है।

मैया का नाम यशोदा क्यों पड़ा

यशोदा नाम इसलिए पड़ा कि उन्होंने भगवान को यश दिया। उन्होंने उनको सगुण बना दिया, बांध दिया। संस्कृत में 'गुण' शब्द का एक अर्थ रस्सी है। ब्रह्म निर्गुण है जिसको रस्सी नहीं लगती। लेकिन प्रेम ऐसा है कि वह निर्गुण भगवान को भी बांधकर रख देता है। प्रेम की रस्सी दूसरी होती है। जो भौंरा सूखे काष्ठ में छेद करके घर बना लेता है, वही भौंरा जब कोमल पंखुड़ियों में कैद होता है तब उसकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। और वह कमल की पंखुरियों में बन्द होकर सवेरा होने की प्रतीक्षा करता है और अंत में घुटकर मर जाता है क्योंकि उसे कमल से प्रेम है। परमात्मा भी प्रेम बंधन नहीं तोड़ सकता। भगवान ऐसे कृपालु हैं कि कभी डरते भी हैं, कभी रोते भी हैं, कभी भागते भी हैं, कभी पकड़े भी जाते हैं और कभी बंध भी जाते हैं। इस प्रकार माता यशोदा ने नित्यमुक्त को बांधकर भक्ति की महिमा दिखा दी। भगवान में कितना अनुग्रह है और माता में कितना प्रेम है–इन दोनों का स्पष्ट दर्शन होता है इस लीला में। पृथ्वी पर यशोदाजी जैसा कोई नहीं, जिसने मुक्तिदाता को उखल से बांध दिया है और जिससे मुक्ति कह रही है कि मैया, मुझे मुक्त कर दे, मुक्त कर दे। भगवान का यह प्रसाद न तो ब्रह्मा को प्राप्त हुआ–जो पुत्र हैं, न शंकर को प्राप्त हुआ–जो आत्मा हैं और न लक्ष्मी (पत्नी) को–जो उनके वक्षःस्थल में विराजती हैं। इसलिए यशोदाजी को जो प्रसाद मिला वह अनिर्वचनीय है।

●●●

ज्योति की सत्ता के विविध आयाम

कमलेश कमल

भारतीय संस्कृति के अप्रतिम ध्वज-धारक स्वामी विवेकानंद ने कहा था- ''सनातन तत्वों में सत्य की खोज करनी होगी।'' इसे आदर्श मान सत्य के निमित्त जब सनातन तत्वों की अवगाहना करते हैं तो ,इस दृष्टि से 'ज्योति' ही प्रथम अवगाहनीय तत्व दिखाई देता है। निस्संदेह, 'ज्योति' भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण संकल्पनाओं में से एक है ।

आदि ग्रन्थों में हमारे दीर्घतपा, अनुसंधानमति ऋषि-मुनियों द्वारा आभ्यन्तरिक यथार्थ, आत्म तत्त्व , ज्योतिर्मय परमतत्त्व आदि को समुद्घाटित करने के लिए ज्योति की महत्ता को प्रमुखता से रेखांकित किया है। भारतीय दर्शन में अग्नि से ही जगत् की उत्पत्ति मानी गई है और अग्नि 'ज्योति' का केंद्र है । इतना ही नहीं , ऋग्वेद में साधना का उद्देश्य ही 'अभय-ज्योति' की प्राप्ति को माना गया है।

'ज्योति' शब्द सुनते ही हमारे मन में ज्ञान और चेतना के स्तर के समानुपातिक रूप में अलग-अलग अवधारणाएँ अवतरित होती हैं । एक सामान्य व्यक्ति 'ज्योति' का अर्थ रोशनी, प्रकाश या लाइट मान सोचना बंद कर देता हैय जबकि यह एक बहुलार्थी, बहुआयामी और कहीं बृहत्तर संकल्पना है ।

लगभग सभी धर्म ग्रंथों में ज्योति की महत्ता व्याख्यायित हुई है। और, इन्सानियत से बड़ा धर्म तो कुछ भी नहीं ! कहा भी गया है-

''मजहब कोई लौटा ले और उसकी जगह
दे दे, तहजीब सलीबे की इंसान करीने की ।
जो जहरे-हलाहल है, अमृत भी वहीं नादां,
मालूम नहीं तुझको अन्दाज ही पीने के ।''

बहरहाल, ऋषि-महर्षि, योगी-यति, संत-महात्मा, आलिम-औलिया, पीर-पैगम्बर, पादरी सभी ने अलग-अलग नामों से इस एक की ही महिमा गाई है -ज्योति, प्रभा,दीप्ति, मरीचि, लाइट, रोशनी,नूर एक हैं, तो दिव्य-ज्योति, डिवाइन-लाइट, या नूर-इलाही भी एक ही हैं । इनमें भेद उनके लिए है जो शास्त्रों का अध्ययन नहीं करते या फिर निहित स्वार्थवश इनके ऐक्य को नहीं मानते । ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है -

''यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा
शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य
दर्पणः किं करिष्यति ।।''

भारतीय जन-मन, जीवन और सनातन धर्म में ज्योति की महत्ता को देखते हुए इसे विविध सांस्कृतिक पहलुओं से देखा और परखा जाना समीचीन होगा। आत्म-ज्योति, जीवन-ज्योति, परम-ज्योति, ज्योतिष, अखंड-ज्योति, ज्योतिर्लिंग, ज्योतिर्विज्ञान, सब कुछ तो ज्योति पर ही संकेंद्रित है।

आदि ग्रन्थों में हमारे दीर्घतपा, अनुसंधानमति ऋषि-मुनियों द्वारा आभ्यन्तरिक यथार्थ, आत्म तत्त्व , ज्योतिर्मय परमतत्त्व आदि को समुद्घाटित करने के लिए ज्योति की महत्ता को प्रमुखता से रेखांकित किया है। भारतीय दर्शन में अग्नि से ही जगत् की उत्पत्ति मानी गई है और अग्नि 'ज्योति' का केंद्र है । इतना ही नहीं , ऋग्वेद में साधना का उद्देश्य ही 'अभय-ज्योति' की प्राप्ति को माना गया है। इस निमित्त एक स्तुति है - "हे आदित्य ! मुझे दाहिने और बायें का ज्ञान नहीं है, मैं पूर्व और पश्चिम दिशाओं को नहीं जानता । मेरा ज्ञान परिपक्व नहीं है, और ज्ञान के बिना मैं मूढ और हतोत्साह हो गया हूँ । यदि आपकी कृपा है, तो मैं अवश्य ही 'अभय-ज्योति' को प्राप्त कर सकता हूँ ।- ऋग्वेद-2.27.11

उपनिषदों में भी ब्रह्म को परमतत्त्व, मूल-तत्त्व और परमशब्द के साथ-साथ 'परम-ज्योति' भी कहा गया है।शास्त्रों की अवगाहना से भी यही परिलक्षित होता है कि सत्य की कोई भी खोज अंततः कहीं न कहीं ज्योति से सम्बंध हो जाती है।महर्षि याज्ञवल्क्य की कथा आती है कि जब राजा जनक ने उनसे पूछा

कि आत्मा क्या है, तो उन्होंने कहा-''ज्योति ही आत्मा है।'' इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कहा था कि दिन में हम सूर्य की ज्योति से देखते हैं, तो रात में चंद्रमा की ज्योति से। लेकिन दिन हो या रात, जब आँखें बंद हों, तब हम शब्दों के द्वारा कल्पना कर देखते हैं, या शब्दों की ज्योति से देखते हैं। लेकिन, जब शब्द भी न हों, तब जो हम देखते या महसूस करते हैं, वह आत्मा की सत्ता है, और वही आत्मा की ज्योति है। उन्होंने कहा था - ''योयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यंतज्योतिर्रू पुरुषः!'' वेदों में भी इस हेतु संकेत मिलता है कि इस ज्योति के प्राकट्य हेतु स्वाध्याय की कुंजी अपेक्षित है और अंतः स्फुरण भी तभी संभव हैय जब स्वाध्याय हो, आत्मचिंतन हो। आंतरिक यथार्थ और आत्मतत्त्व की ज्योतिर्मय झलक भी तभी संभव है।

वैज्ञानिक नजरिए से भी 'ज्योति' ऊर्जा, विद्युत-चुंबकीय विकिरण के मूलभूत कण प्रकाशाणु ;प्रकाश-अणुद्ध या फोटोन (चीवजवद) आदि है। पौधे से लेकर जीव-जंतु तक के भोजन और जीवन के लिए 'ज्योति' की आवश्यकता है। बिना इसके पादप अपना भोजन बना ही नहीं सकतेय क्योंकि प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) का अर्थ ही है कि 'फोटो' ,प्रकाश या 'ज्योति' है, तभी सिंथेसिस होगा, संश्लेषण, सर्जन या निर्माण होगा। तो, ज्योति के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

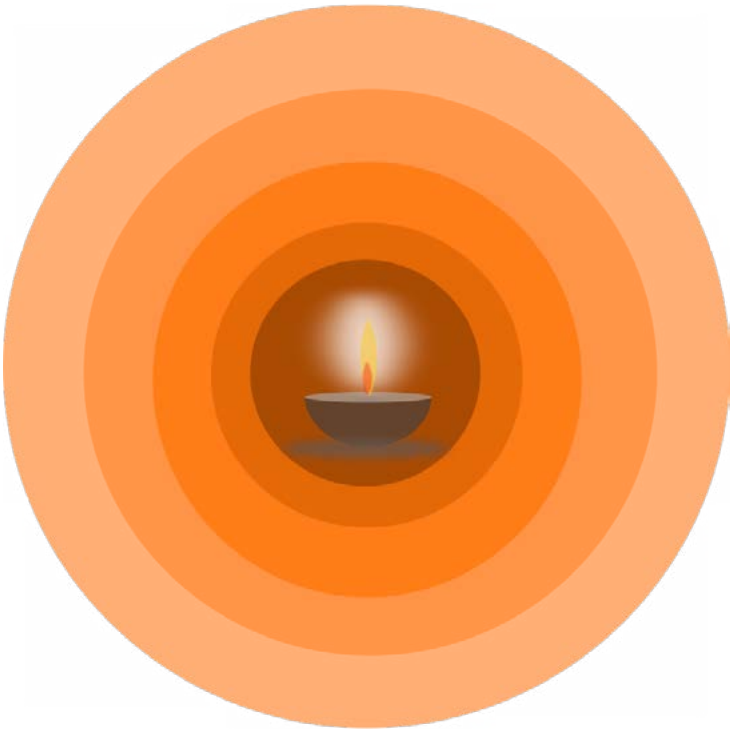

इतना ही नहीं आधुनिक विज्ञान की एक बड़ी उपलब्धि 'विद्युत' भी उसी 'द्युत्' धातु में 'वि' उपसर्ग जोड़कर बना है, जिससे ज्योति शब्द बना है और जिसका अर्थ है-'विशेष चमक'। तो 'विद्युत' भी 'ज्योति' शब्द की महिमा का ही विस्तार है।

विज्ञान मानता है कि ज्योति की यांत्रिक तरंगें निर्वात में अनुप्रस्थ रूप में (ट्रांसवर्स) गमन कर सकती हैं और इनका द्रव्यमान और भार शून्य होता है। हमें विचार करना चाहिए कि आत्मा एवं ब्रह्म को ज्योतिर्मय बता कर इसकी इन्हीं विशेषताओं की ग्रंथों में चर्चा हुई है।

विज्ञान मानता है कि विद्युत ऊर्जा है, इसका क्षय नहीं होता अपितु रूपांतरण होता है। धर्म भी यही मानता है कि आत्मज्योति का नाश नहीं होता, बस स्वरूप परिवर्तन होता है। भगवद् गीता में इसे ऊष्मा गतिकी के प्रथम नियम (ऊर्जा के संरक्षण का सि(ंत) के प्रतिपादन से पूर्व ही इस तरह कहा गया -

नैनं छिद्रन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकरू।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत॥
(द्वितीय अध्याय, श्लोक 23)

योग-साधना में मानव चेतना के मूल के रूप में आज्ञा चक्र में स्थित दिव्यनेत्र, अंतः त्राटक के केंद्र के रूप में प्रकाशज्योति की ही स्वस्तिप्रद संकल्पना है। सत्य को मुक्ति का हेतु बताते हुए बुद्ध का "अप्पदीपो भव" हो या आर्ष)षियों, महामनीषियों का "ज्योतिष्मान भव" य इस प्रकाशमान, ज्योतिर्मय सत्ता को ही अलग-अलग विधियों से इंगित करता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखें तो ईश्वर भी ज्योतिर्मय ही हैं - प्रचंड-प्रवाह-युक्त अक्षय-पुंज। साकार उपासक अपने आराध्य या उपास्य की तस्वीर के चहुँ ओर प्रभामंडल दिखा कर इसे ही तो इंगित करते हैं।

निराकार ब्रह्म को मानने वाले भले ही कोई मूर्ति नहीं लगाते, पर अपनी आराधना का केंद्र 'ज्योति' को ही मानते हैं। इस साधना प(ति में ऐसी अश्वस्ति है कि जैसे सोना आग में तप कर कुंदन बन जाता है, वैसे ही तप की अग्नि से अंतर्ज्ञान की 'ज्योति' प्रज्वलित होती है। इसी अर्थ में कहा गया है- "मेरे मन के अंधकमल में ज्योतिर्मय उतरो।"

वैसे, गहराई में उतर कर देखा जाए तो, पूरा का पूरा अध्यात्म मात्र तीन मूलभूत तत्त्वों के अंतर्संबंध को आख्यायित करता है- ज्योति, शब्द और आत्मा। शास्त्रों में शब्दों से जिसकी अभिव्यक्ति हुई है, वह शब्द-ब्रह्म, साधना की प(ति में 'ज्योति-स्वरूप परंब्रह्म' में परिणत हो जाता है। आत्मा का परमात्मा से और आत्म-ज्योति का दिव्य-ज्योति से सम्मिलन एक ही परिघटना के अलग-अलग नाम हैं।

ज्योतिषीय दृष्टि से तो ''ज्योति ही ज्योतिष है'' -''ज्योतिरेव ज्योतिषिम''। सृष्टि के मूल में तो 'ज्योति' ही है। उपनिषदों में भी ब्रह्म को 'सत्यस्य सत्यम' के साथ-साथ 'ज्योतिषाम् ज्योति' भी कहा गया है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब 'ज्योति' पर ही निर्भर हैं। वेद की आँखों के रूप में ज्योतिष को अभिहित करने का कारण भी किंचित यही है। तो, सामान्य दृष्टिकोण से 'ज्योति' से बना ज्योतिष ही वह तत्त्व है, जो भवितव्यता को देखने व इसकी दिशा व दशा को कुछ हद तक प्रभावित करने में मदद करता है! ज्योतिष संबंधी सि(ंत या ग्रंथ को भी 'ज्यौतिष' कहा जाता है, जो

कि 'ज्योति' शब्द की सत्ता के विस्तार का ही द्योतक है ।

धर्म, दर्शन आदि भारतीय संस्कृति के विविध घटकों में निहित ज्योति की सत्ता और महत्ता के स्थापत्य के प्रयोजन हेतु भाषा-विज्ञान भी एक संपूरक दृष्टिकोण देने में सर्वथा सक्षम है।चराचर विश्व को आलोकित करने का काम दिन में सूर्य की ज्योति करती है, जिसे आदित्य ज्योति, अरुण-ज्योति, दिन ज्योति, दिनकर ज्योति आदि कहते हैं । इसी तेजोमय रूपविधान के कारण सूर्य को भास्कर भी कहा गया है ! 'भा' का अर्थ प्रकाश या ज्योति, 'कर' का अर्थ करने वाला ! इतना ही नहीं, 'ज्योति' से बनने वाले अनेक शब्द, यथा - खज्योति, तमो-ज्योति, महा-ज्योति, मूर्द्ध ज्योति, मेघज्योति, बहिर्ज्योति, विश्वज्योति, सुवर्णज्योति, स्वयंज्योति, अखण्डज्योति, आदि भी ज्योति की विस्तीर्ण सत्ता को ही व्याख्यायित करते हैं ।

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो ज्योति शब्द 'द्युत्' धातु से बना है। 'द्युत्' धातु से ही 'द्युत' विशेषण बनता है, जिसका अर्थ है 'चमकीला' या 'प्रकाशमान' । 'द्युत्' धातु में 'इन' प्रत्यय लगाकर 'द्युति' बनता है, जिसका अर्थ है -लावण्य या चमक !

थोड़ी शाब्दिक यात्रा करें तो जिसमें चमक हो उसे द्युतिमान कहते हैं, तथा सूर्य, चंद्र आदि ज्योतिर्पिण्ड जो चमक या प्रकाश करते हैं, उन्हें द्युतिकर कहते हैं । तारे, सूर्य आदि प्रकाशमान पदार्थों के लोक का एक नाम 'द्युलोक' भी है। सभी 'द्युति' या ज्योति को धारण करने के कारण विष्णु को 'द्युतिधर' भी कहते हैं ।

व्याकरणिक आधार पर देखें तो मौलिक धातु 'द्युत्' से ज्योति की व्युत्पत्ति इस तरह हुई : द्युत्-ज्युत्-ज्योत-ज्योति ।

(नियमः- द्युत् में इसिन् प्रत्यय तथा 'दकार' को 'जकारादेश' करके ज्योतिः या ज्योतिष् बना। इसी में अच् प्रत्यय करके ज्योतिष शब्द बना।)

व्याकरण के उत्तुंग शिखर से उतर लोक-जीवन में झाँके तो ज्योति-कलश का स्थापन, संध्या-आरती, अखण्ड -ज्योति आदि की मान्यता से जनजीवन में ज्योति की महत्ता रेखांकित होती है। सर्वशक्तिमान, जगदीश्वर शिव की स्वयंभू ज्योति की पहचान के रूप में भारतवर्ष की पुनीत धरा पर 12 जगहों पर स्थापित ज्योतिर्लिंग तो 'ज्योति' की महिमा के सबसे बड़े संकेत हैं ।

आर्ष मनीषियों द्वारा सत्य के साक्षात् प्रत्यक्षगोचर होने के कारण आत्मा के ज्योतिस्वरूपा होने की उनकी अश्वस्ति जनजीवन में भी स्वस्तिप्रद रूप में आस्थित है। ''ज्योति से ज्योति जगाते चलो'' का गान हो या दीपावली का त्यौहार, इसी को मंगल-मंजुल रूप से निरूपित करता है।

दीपावली के त्यौहार का प्रतीकात्मक अर्थ तो ज्ञान-ज्योति द्वारा आत्म-ज्योति को जगाने का ही है। 'दीप' देह का प्रतीक है, तेल आत्मा है, चेतना बाती है, आत्मज्ञान ही ज्योति है, जो अज्ञान और मिथ्याज्ञान के 'तम' को दूर करता है। इसी दीप का जलना ''तमसो माँ अमृतगमयः''की प्रार्थना को चरितार्थ करता है।

दीपावली के त्यौहार का प्रतीकात्मक अर्थ तो ज्ञान-ज्योति द्वारा आत्म-ज्योति को जगाने का ही है। 'दीप' देह का प्रतीक है, तेल आत्मा है, चेतना बाती है, आत्मज्ञान ही ज्योति है, जो अज्ञान और मिथ्याज्ञान के 'तम' को दूर करता है। इसी दीप का जलना ''तमसो माँ अमृतगमयः''की प्रार्थना को चरितार्थ करता है। चूँकि, यह मानव तन (पश्चभूतजनित देह) रूपी दीप को 'माटी का तन' कहा गया हैय इसलिए दीप भी मिट्टी के ही बनाए गए ।

अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटने के कारण ही हम इन तथ्यों से अनभिज्ञ होते चले गए और आज दीपावली मनाते समय किंचित स्मरण भी नहीं होता कि दीप तो हम स्वयं ही हैं और निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु ज्योति तो कदाचित् हमारे अंदर ही प्रदीप्त होनी है।

आत्मज्योति को प्रदीप्त करने में गुरु की महती भूमिका होती है। जिसे गुरुकृपा या गुरुमहिमा के विशेषण से अभिहित किया जाता है। कहा गया है-

''दीप ज्योति परं ज्योति, दीप ज्योति जनार्दनः।
दीपोहरतु मे पापं,दीपज्योति नमोस्तुते ।।
शुभम करोति कल्याणं आरोग्यम् सुख संपदः।
द्वेषबुद्धिविनाशाय, आत्म ज्योति नमोस्तुते।।
आत्मज्योति प्रदीप्ताय, ब्रह्मज्योति नमोस्तुते।
ब्रह्मज्योति प्रदीप्ताय, गुरुज्योति नमोस्तुते ।।''

-अर्थात् दीपज्योति ही परम ज्योति है, दीपज्योति ही जनार्दन या विष्णु है, इससे ही पाप का हरण होता है, इसी से शुभ, आरोग्य, सुख-संपदा है। द्वेषबुध्दि का विनाश भी आत्मज्योति से ही संभव होता है । आत्मज्योति के प्रदीप्त होने के लिए ब्रह्म ज्योति को नमन और ब्रह्म ज्योति से साक्षात्कर के लिए गुरुज्योति को नमन । इसकी अंतिम पंक्ति की महत्ता को कबीर ने अपने तरीके से कहा- ''बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविंद दियौ बताय।''

यहाँ ध्यातव्य है कि गुरु का तो अर्थ ही ज्योति है ('गु' का अर्थ अंधकार है और 'रु' प्रकाश है) तभी तो वे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं ।' निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ज्योति की सत्ता अपरिमित, और अतिविस्तीर्ण है । जीवन का कोई भी आयाम ज्योति से अनछुआ नहीं है । यह हम पर है कि भारतीय संस्कृति के सरोकारों से संपृक्त रह, विचारों के औदात्य और स्वाध्याय से युक्त होकर आत्मज्योति से परम-ज्योति की ओर की यात्रा आरंभ करते हैं, अथवा नहीं।

●●●

मनोरथ पूरे करने का महीना

आरती सक्सेना

सृष्टि में जन्म लेते ही मनुष्य के लिए मनोरथ की सिद्धि जीवन का लक्ष्य बन जाती है। इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए मनुष्य अपनी सभ्यता के अनुसार अलग-अलग विधियां अपनाता है । इन विधियों में साधना, आराधना, उपासना, अध्ययन, शोध एवं वे समस्त भौतिक अथवा पराभौतिक उपादान होते हैं जिनसे उसे लगाता है कि उसका मनोरथ सिद्ध हो सकता है, वह करता जाता है । हमारी सनातन संस्कृति मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित और ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए समस्त व्यवस्थाएं मुहैया कराती है । इन व्यवस्थाओं में हमारी संस्कृति ने इतना कुछ दिया जिनमें से एकांश भी हासिल कर लेने पर जीवन की दिशा व्यवस्थित हो जाती है ।

कार्तिक महीने की शुरुआतशरद पूर्णिमा से हो जाती है। इसके बाद करवा चौथ, धनतेरस, रूप चौदस, दीपावली, गोवर्धन पूजा, भैया दूज, देव उठनी एकादशी आदि पर्व मनाए जाएंगे। कार्तिक महीने का समापन गुरु नानक पूर्णिमा पर होता है। कार्तिक महीने में देवउठनी एकादशी के अवसर पर एक बार फिर शुभ एवं मांगलिक कार्यो की शुरुआत हा जाता है। विवाह, शादी, गृह प्रवेश, मुहूर्त आदि का सिलसिला भी शुरु हो जाता है।

इसी में एक महीना आता है जिसका नामकरण भगवान शिव के पुत्र कार्तिक के नाम पर किया गया है। कार्तिक माह में पूर्ण निष्ठा और भक्ति भाव से पूजा अर्चना करने से मनोकामनाएं पूरी होती हैं। कार्तिक महीने में बड़े और मुख्य तीज-त्यौहार पड़ते हैं। कार्तिक महीने की शुरुआतशरद पूर्णिमा से हो जाती है। इसके बाद करवा चौथ, धनतेरस, रूप चौदस, दीपावली, गोवर्धन पूजा, भैया दूज, देव उठनी एकादशी आदि पर्व मनाए जाएंगे। कार्तिक महीने का समापन गुरू नानक पूर्णिमा पर होता है। कार्तिक महीने में देवउठनी एकादशी के अवसर पर एक बार फिर शुभ एवं मांगलिक कार्यों की शुरुआत हो जाती है। विवाह, शादी, गृह प्रवेश, मुहूर्त आदि का सिलसिला भी शुरू हो जाता है।

कार्तिक महीने का महत्व

- ❖ हिंदू पंचांग के 12 मास में कार्तिक भगवान विष्णु का मास है। इसमें नक्षत्र-ग्रह योग, तिथि पर्व का क्रम धन, यश-ऐश्वर्य, लाभ, उत्तम स्वास्थ्य देता है।
- ❖ प्राचीन काल में अलग-अलग महीनों में वर्ष की शुरूआत होने का उल्लेख मिलता है,

लेकिन आधुनिक काल में वर्ष का आरम्भ भारत के विभिन्न भागों में कार्तिक या चैत्र मास में होता है।

❖ इसी मास में शिव पुत्र कार्तिकेय ने तारकासुर राक्षस का वध किया था, इसलिए इसका नाम कार्तिक पड़ा, जो विजय देने वाला है।

❖ कार्तिक महीने का माहात्म्य स्कन्द पुराण, नारद पुराण, पद्म पुराण में भी मिलता है।

❖ कार्तिक मास के लगभग बीस दिन मनुष्य को देव आराधना द्वारा स्वयं को पुष्ट करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए इस महीने को मोक्ष का द्वार भी कहा गया है।

❖ शास्त्रों में कहा गया है कि कार्तिक मास में मनुष्य की सभी आवश्यकताओं, जैसे- उत्तम स्वास्थ्य, पारिवारिक उन्नति, देव कृपा आदि का आध्यात्मिक समाधान बड़ी आसानी से हो जाता है।

इस महीने में क्या करें और क्या नहीं

शास्त्रों के मुताबिक इस महीने में मांस-मछली व मट्ठा का त्याग करना चाहिए। इसके साथ ही पूरे महीने संयम से रहना चाहिए। इसके अलावा व्रत-उपवास और नियम के साथ तप करना चाहिए।

दीपदान

धर्म शास्त्रों के अनुसार, कार्तिक मास में सबसे प्रमुख काम दीपदान करना बताया गया है। इस महीने में नदी, पोखर, तालाब आदि में दीपदान किया जाता है। इससे पुण्य की प्राप्ति होती है।

तुलसी पूजा

इस महीने में तुलसी पूजन करने तथा सेवन करने का विशेष महत्व बताया गया है। वैसे तो हर मास में तुलसी का सेवन व आराधना करना श्रेयस्कर होता है, लेकिन कार्तिक में तुलसी पूजा का महत्व कई गुना माना गया है।

भूमि पर शयन

भूमि पर सोना कार्तिक मास का तीसरा प्रमुख काम माना गया है। भूमि पर सोने से मन में सात्विकता का भाव आता है तथा अन्य विकार भी समाप्त हो जाते हैं।

सिर्फ एक दिन लगाएं तेल

कार्तिक महीने में केवल एक बार नरक चतुर्दशी (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी) के दिन ही शरीर पर तेल लगाना चाहिए। कार्तिक मास में अन्य दिनों में तेल लगाना वर्जित है।

द्विदलन निषेध

कार्तिक महीने में द्विदलन अर्थात उड़द, मूंग, मसूर, चना, मटर, राई आदि नहीं खाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य

कार्तिक मास में ब्रह्मचर्य का पालन अति आवश्यक बताया गया है। इसका पालन नहीं करने पर पति-पत्नी को दोष लगता है और इसके अशुभ फल भी प्राप्त होते हैं.

संयम रखें

व्रती (व्रत करने वाला) को चाहिए कि वह तपस्वियों के समान व्यवहार करे। अर्थात कम बोले, किसी की निंदा या विवाद न करे, मन पर संयम रखें आदि।

●●●

पंचदिवसीय दीपोत्सव

डॉ० सरोज तिवारी

सावन में आदि देव शिव को पूजा गया । अश्विन में पुरखो को तृप्त कर लिया गया। शक्ति की आराधना हो चुकी । अब जीवन संचालन के लिए महालक्ष्मी को खुश करने की आवश्यकता आन पडी है । दुःख , दारिद्र और अकाल को जीवन से दूर कर लक्ष्मीजी को हर घर में निवास योग्य व्यवस्था बनाने का पर्व है दीपावली। यह पांच दिनों तक मनाया जाने वाला ऐसा दीप पर्व है जिसको वास्तव में वैज्ञानिक तौर पर शास्त्रीय विधि से मन लेने के बाद वर्ष भर के लिए जीवन संचालन की व्यवस्था बन ही जाती है। यही अमावस्या महानिशा भी है और इसी रात तंत्र के साधक अपनी सिद्धियों को पुनर्जीवित करते है। मन्त्र और तंत्र साधको के लिए यह महारात है।

"भारतीय जीवन दर्शन में दीपावली से पूर्व व्यक्ति हर प्रकार के पुराने भौतिक लें दें से खुद को मुक्त कर लेता है। दरअसल यही वास्तविक खता बही सपूर्णाङ्क तिथि भी है। आजकल जो आथिक क्लोजिंग मार्च में होती है वह वास्तव में भारतीय व्यवस्था में इसी दीपावली तक कर ली जाती थी।"

यह सच में सृष्टि का सबसे बड़ा सामाजिक पर्व है जो इससे पूर्व के आनुष्ठानिक शास्त्रीयताओ से इतर विशुद्ध भौतिक सन्साधनो के समन्वय की व्यस्थापक भूमिका में हर साल हम मनाते है। अब तक किये जा चुके अनुष्ठानों के बाद अब मानवीय उत्सव की बारी है। दीपोत्सव में केवल अनुष्ठान भर नहीं है बल्कि जीवन को आरोग्य , सुंदर और सुखी बनाने के लिए हर प्रकार के उपाय यही से उपजते है। धनतेरस को भगवान् धन्वन्तरि की पूजा के साथ आयुर्वेद और धातु संग्रह से यह शुरू होता है। दूसरे दिन नरक चतुर्दशी को यमदीप और दरिद्रखेदण होता है। तीसरे दिन दीपोत्सव ,चौथे दिन अन्नपूर्णा के लिए अन्नकूट और पांचवे दिन गोवर्धनपूजा के साथ ही भाई दूज। इसी दिन कायस्थ समाज का चित्रगुप्त पूजन यानी कलम दावत की पूजा। तात्पर्य यह की इस पंचदिवसीय आयोजन के साथ ही भारतीय संस्कृति उसके भौतिक जीवन में सुखमय प्रवेश के द्वार खोलती है।

भारतीय जीवन दर्शन में दीपावली से पूर्व व्यक्ति हर प्रकार के पुराने भौतिक लें दें से खुद को मुक्त कर लेता है। दरअसल यही वास्तविक खता बही सपूर्णाङ्क तिथि भी है। आजकल जो आथिक क्लोजिंग मार्च में होती है वह वास्तव में भारतीय व्यवस्था में इसी दीपावली तक कर ली जाती थी। दीपावली केवल दिया जलाकर खा पी लेने का उत्सव भर नहीं है , यही है पृथ्वी पर सृष्टि के भौतिक संसाधनों के साथ क्रियाशील होने का मुहूर्त। सृष्टि में मानव जीवन की भौतिक जरूरतों के संग्रह के पंचदिवसीय उत्सव की व्याख्या प्रस्तुत कर रही हैं डॉ० सरोज तिवारी -

ज्योति पर्व

दिवाली या दीपावली अर्थात रोशनी का त्यौहार शरद ऋतु (उत्तरी गोलार्द्ध) में हर वर्ष मनाया जाने वाला एक प्राचीन हिंदू त्यौहार है। दीवाली भारत के सबसे बड़े और प्रतिभाशाली त्यौहारों में से एक है। यह त्यौहार आध्यात्मिक रूप से अंधकार पर प्रकाश की विजय को दर्शाता है। भारतवर्ष में मनाए जाने वाले सभी त्यौहारों में दीपावली का सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। इसे दीपोत्सव भी कहते हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् 'अंधेरे से ज्योति अर्थात प्रकाश की ओर जाइए' यह उपनिषदों की आज्ञा है। इसे सिख, बौद्ध तथा जैन धर्म के लोग भी मनाते हैं। जैन धर्म के लोग इसे महावीर के मोक्ष दिवस के रूप में मनाते हैं तथा सिख समुदाय इसे बंदी छोड़ दिवस के रूप में मनाता है। माना जाता है कि दीपावली के दिन अयोध्या के राजा श्री रामचंद्र अपने चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात लौटे थे। अयोध्यावासियों का ह्रदय अपने परम प्रिय राजा के आगमन से उल्लसित था। श्री राम के स्वागत में अयोध्यावासियों ने घी के दीए जलाए। कार्तिक मास की सघन काली अमावस्या की वह रात्रि दीयों की रोशनी से जगमगा उठी। तब से आज तक भारतीय प्रति वर्ष यह प्रकाश-पर्व हर्ष व उल्लास से मनाते हैं। यह पर्व अधिकतर ग्रिगेरियन कैलन्डर के अनुसार अक्टूबर या नवंबर महीने में पड़ता है। दीपावली दीपों का त्यौहार है। भारतीयों का विश्वास है कि सत्य की सदा जीत होती है झूठ का नाश होता है। दीवाली यही चरितार्थ करती है- असतो मां सद्गमय, तमसो मां ज्योतिर्गमय। दीपावली स्वच्छता व प्रकाश का पर्व है। कई सप्ताह पूर्व ही दीपावली की तैयारियां आरंभ हो जाती हैं। लोग अपने घरों, दुकानों आदि की सफाई का कार्य आरंभ कर देते हैं। घरों में मरम्मत, रंग-रोगन, सफेदी आदि का कार्य होने लगता है। लोग दुकानों को भी साफ सुथरा कर सजाते हैं। बाज़ारों में गलियों को भी सुनहरी झंडियों से सजाया जाता है। दीपावली से पहले ही घर-मोहल्ले, बाज़ार सब साफ-सुथरे व सजे-धजे नजऱ आते हैं। दिवाली शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों दीप अर्थात दिया व आवली अर्थात लाइन या श्रृंखला के मिश्रण से हुई है। इसके उत्सव में घरों के द्वारों, घरों व मंदिरों पर लाखों प्रकाशकों को प्रज्वलित किया जाता है।

आध्यात्मिक महत्व

प्राचीन ग्रन्थ रामायण में बताया गया है कि, कई लोग दीपावली को 14 साल के वनवास पश्चात भगवान राम व पत्नी सीता और उनके भाई लक्ष्मण की वापसी के सम्मान के रूप में मानते हैं। अन्य प्राचीन हिन्दू महाकाव्य महाभारत अनुसार कुछ दीपावली को 12 वर्षों के वनवास व 1 वर्ष के अज्ञातवास के बाद पांडवों की वापसी के प्रतीक रूप में मानते हैं। कई हिंदु दीपावली को भगवान विष्णु की पत्नी तथा उत्सव, धन और समृद्धि की देवी लक्ष्मी से जुड़ा हुआ मानते हैं। दीपावली का पांच दिवसीय महोत्सव देवताओं और राक्षसों द्वारा दूध के लौकिक सागर के मंथन से पैदा हुई लक्ष्मी के

जन्म दिवस से शुरू होता है। दीपावली की रात वह दिन है जब लक्ष्मी ने अपने पति के रूप में विष्णु को चुना और फिर उनसे शादी की। लक्ष्मी के साथ-साथ भक्त बाधाओं को दूर करने के प्रतीक गणेश, संगीत, साहित्य की प्रतीक सरस्वती; और धन प्रबंधक कुबेर को प्रसाद अर्पित करते हैं कुछ दीपावली को विष्णु की वैकुण्ठ में वापसी के दिन के रूप में मनाते है। मान्यता है कि इस दिन लक्ष्मी प्रसन्न रहती हैं और जो लोग उस दिन उनकी पूजा करते है वे आगे के वर्ष के दौरान मानसिक, शारीरिक दुखों से दूर सुखी रहते हैं।

भारत के पूर्वी क्षेत्र उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में हिन्दू लक्ष्मी की जगह काली की पूजा करते हैं, और इस त्यौहार को काली पूजा कहते हैं। मथुरा और उत्तर मध्य क्षेत्रों में इसे भगवान कृष्ण से जुड़ा मानते हैं। अन्य क्षेत्रों में, गोवर्धन पूजा (या अन्नकूट) की दावत में कृष्ण के लिए 56 या 108 विभिन्न व्यंजनों का भोग लगाया जाता है और सांझे रूप से स्थानीय समुदाय द्वारा मनाया जाता है।दीप जलाने की प्रथा के पीछे अलग-अलग कारण या कहानियां हैं। राम भक्तों के अनुसार दीवाली वाले दिन अयोध्या के राजा राम लंका के अत्याचारी राजा रावण का वध करके अयोध्या लौटे थे। उनके लौटने कि खुशी मे आज भी लोग यह पर्व मनाते है। कृष्ण भक्तिधारा के लोगों का मत है कि इस दिन भगवान श्री कृष्ण ने अत्याचारी राजा नरकासुर का वध किया था। इस नृशंस राक्षस के वध से जनता में अपार हर्ष फैल गया और प्रसन्नता से भरे लोगों ने घी के दीए जलाए। एक पौराणिक कथा के अनुसार विंष्णु ने नरसिंह रुप धारणकर हिरण्यकश्यप का वध किया था तथा इसी दिन समुद्रमंथन के पश्चात लक्ष्मी व धन्वंतरि प्रकट हुए।

आयुर्वेद

भगवान् धन्वन्तरि को देवताओ के चिकित्सक के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। वास्तव में धन्वन्तरि ही आयुर्विज्ञान के देवता है इसलिए धनतेरस को आयुर्वेद के लिए शुभदिवस के रूप में भी मनाया जाता है। इस दिन लोग यम देवता के नाम पर व्रत भी रखते हैं। धनतेरस के दिन दीप जलाककर भगवान धन्वन्तरि की पूजा की जाती है तथा भगवान धन्वन्तरी से स्वास्थ और सेहतमंद बनाये रखने हेतु प्रार्थना की जाती है।

अन्नकूट या परुवा

यह परुवा बचपन से सभी सुनते आ रहे है। अनेक पीढ़िया बीत चुकी.अनगिनत सभ्यताए विकसित होकर खत्म हो चुकी. अनगिनत विद्वान आये और जगत से विदा हो गये. यह परुवा यूं ही आता है और चला जाता है। कोई लोक भाषा में परुवा कहता है। कोई परेवा कहता है। आज के दिन हर घर के दरवाजे पर यानी गोष्ठ में गोबर से अन्नकूट बनाकर उसे पशुओ से ही कूटने के लिए छोड़ दिया जाता है। हमारी वैष्णव परम्परा में यह अन्नकूट होता है। आज के दिन ही भगवान विष्णु को ५६ भोग लगाने की परम्परा है। सभी वैष्णव मंदिरो में इस दिन छप्पन भोग बनाकर भगवान् को भोग लगाया जाता है।

नरक चतुर्दशी

नरक चतुर्दशी की जिसे छोटी दीपावली भी कहते हैं। इसे छोटी दीपावली इसलिए कहा जाता है क्योंकि दीपावली से एक दिन पहले रात के वक्त उसी प्रकार दीए की रोशनी से रात के तिमिर को प्रकाश पुंज से दूर भगा दिया जाता है जैसे दीपावली की रात। इस रात दीए जलाने की प्रथा के संदर्भ में कई पौराणिक कथाएं और लोकमान्यताएं हैं। एक कथा के अनुसार आज के दिन ही भगवान श्री कृष्ण ने अत्याचारी और दुराचारी दुर्दान्त असुर नरकासुर का वध किया था और सोलह हजार एक सौ कन्याओं को नरकासुर के बंदी गृह से मुक्त कर उन्हें सम्मान प्रदान किया था। इस उपलक्ष में दीयों की बारत सजायी जाती है। यह त्यौहार नरक चौदस या नर्क चतुर्दशी या नर्का पूजा के नाम से भी प्रसिद्ध है। मान्यता है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल तेल लगाकर अपामार्ग (चिचड़ी) की पत्तियाँ जल में डालकर स्नान करने से नरक से मुक्ति मिलती है। विधि-विधान से पूजा करने वाले व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। शाम को दीपदान की प्रथा है जिसे यमराज के लिए किया जाता है। दीपावली को एक दिन का पर्व कहना न्योचित नहीं होगा। इस पर्व का जो महत्व और महात्मय है उस दृष्टि से भी यह काफी महत्वपूर्ण पर्व व हिन्दुओं का त्यौहार है। यह पांच पर्वों की श्रृंखला के मध्य में रहने वाला त्यौहार है जैसे मंत्री समुदाय के बीच राजा। दीपावली से दो दिन पहले धनतेरस फिर नरक चतुर्दशी या छोटी दीपावली फिर दीपावली और गोधन पूजा, भाईदूज।

दरअसल यह परुवा है क्या? यह संधि बेला है सृष्टि के एक दिन के अवसान का। यह संधिकाल है कल की प्रगति का। यह संधिकाल है सृष्टि के जीवन की गति का। यह संधिकाल है संस्कृति के उत्थान का। इसी संधि को पोर कहते है। जैसे बांस के पोर के साथ ही बॉस की लम्बाई बढाती जाती है यह वाही पोई है सृष्टि का, इसे ही पोर भी कहते है और शुद्ध भाषा में यही होता है पर्व।यह सच में सृष्टिपर्व है जो हर साल यह बताने आता है की कल तक जो था आज के बाद वह नया होगा। ठीक वैसा ही नहीं होगा जैसा कल था। इसीलिए इस दिन यानी परुवा के दिन किसी प्रकार के लेंन देंन , दुनियावी कार्य, कृषि कार्य या किसी भी प्रकार की सक्रियता से दूर रहने का विधान है। इस दिन को जीवन के अवकाश के रूप में मनाने का विधान हमारी संस्कृति ने बना दिया है। दरअसल यह सृष्टि के सांसारिक अवकाश का दिन है। आज के ही 11 सांसारिक दिवस बीतने के बाद भगवान विष्णु अपनी क्षीर निद्रा से बाहर आते है उस दिन देव दीपावली होती है। एकादशी को देवोत्थानी एकादशी कहा जाता है। इसी दिन के बाद सृष्ट की सभ्यताए सक्रिय हो जाती है। इसी दिन के बाद सांसारिक कार्यो के लिए सभी रास्ते खुल जाते है। सृष्टि की काल गणना में यहॉ एक पर्व है जो विरामतः गतिमान सृष्टि की यात्रा को बताने लिए हर साल धरती को मिला हुआ एक संस्कार है। इसी को संस्कृति का आधार मान कर सांस्कृतिक यात्रा चलती है।

गोष्ठ और गोष्ठी

गोष्ठ उसे कहते है जहा गाये बाँधी जाती है. यह गोशाला का भाग होता है। गोष्ठ के बाहर बैठ कर की जाने वाली चर्चा ही गोष्ठी कही जाती है। गोष्ठ शब्द अब गाव में घोठा के रूप में जाना जाता है।

आइये बुलाये लक्ष्मी जी को

पूजा की विधि

लक्ष्मी पूजा को प्रदोष काल के दौरान किया जाना चाहिए जो कि सूर्यास्त के बाद प्रारम्भ होता है और लगभग 2 घण्टे 24 मिनट तक

यम द्वितीया (भाई दूज)

भाई दूज (भातृ द्वितीया) कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को मनाए जाने वाला हिन्दू धर्म का पर्व है जिसे यम द्वितीया भी कहते हैं। भाईदूज में हर बहन रोली एवं अक्षत से अपने भाई का तिलक कर उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए आशीष देती हैं। भाई अपनी बहन को कुछ उपहार या दक्षिणा देता है। भाईदूज दिवाली के दो दिन बाद आने वाला ऐसा पर्व है, जो भाई के प्रति बहन के स्नेह को अभिव्यक्त करता है एवं बहनें अपने भाई की खुशहाली के लिए कामना करती हैं। इस त्यौहार के पीछे एक किंवदंती यह है कि यम देवता ने अपनी बहन यमी (यमुना) को इसी दिन दर्शन दिया था, जो बहुत समय से उससे मिलने के लिए व्याकुल थी। अपने घर में भाई यम के आगमन पर यमुना ने प्रफुल्लित मन से उसकी आवभगत की। यम ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि इस दिन यदि भाई-बहन दोनों एक साथ यमुना नदी में स्नान करेंगे तो उनकी मुक्ति हो जाएगी। इसी कारण इस दिन यमुना नदी में भाई-बहन के एक साथ स्नान करने का बड़ा महत्व है। इसके अलावा यमी ने अपने भाई से यह भी वचन लिया कि जिस प्रकार आज के दिन उसका भाई यम उसके घर आया है, हर भाई अपनी बहन के घर जाए। तभी से भाईदूज मनाने की प्रथा चली आ रही है। जिनकी बहनें दूर रहती हैं, वे भाई अपनी बहनों से मिलने भाईदूज पर अवश्य जाते हैं और उनसे टीका कराकर उपहार आदि देते हैं। बहनें पीढियों पर चावल के घोल से चौक बनाती हैं। इस चौक पर भाई को बैठा कर बहनें उनके हाथों की पूजा करती हैं।

रहता है। कुछ स्त्रोत लक्ष्मी पूजा को करने के लिए महानिशिता काल भी बताते हैं। महानिशिता काल तांत्रिक समुदायों और पण्डितों, जो इस विशेष समय के दौरान लक्ष्मी पूजा के बारे में अधिक जानते हैं, उनके लिए यह समय ज्यादा उपयुक्त होता है। सामान्य लोगों के लिए प्रदोष काल मुहूर्त उपयुक्त हैं। लक्ष्मी पूजा के लिए चौघडिय़ा मुहूर्त को देखने की सलाह नहीं हैं क्योंकि वे मुहूर्त यात्रा के लिए उपयुक्त होते हैं। लक्ष्मी पूजा के लिए सबसे उपयुक्त समय प्रदोष काल के दौरान होता है जब स्थिर लग्न प्रचलित होती है। ऐसा माना जाता है कि अगर स्थिर लग्न के दौरान लक्ष्मी पूजा की जाये तो लक्ष्मीजी घर में ठहर जाती है। इसीलिए लक्ष्मी पूजा के लिए यह समय सबसे उपयुक्त होता है। वृषभ लग्न को स्थिर माना गया है और दीवाली के त्यौहार के दौरान यह अधिकतर प्रदोष काल के साथ अधिव्याप्त होता है।

पूजन सामग्री

कलावा, रोली, सिंदूर, एक नारियल, अक्षत, लाल वस्त्र, फूल, पांच सुपारी, लौंग, पान के पत्ते, घी, कलश, कलश हेतु आम का पल्लव, चौकी, समिधा, हवन कुण्ड, हवन सामग्री,कमल गट्टे, पंचामृत (दूध, दही, घी, शहद, गंगाजल), फल, बताशे, मिठाईयां, पूजा में बैठने हेतु आसन, हल्दी, अगरबत्ती, कुमकुम, इत्र, दीपक, रूई, आरती की थाली। कुशा, रक्त चंदनद, श्रीखंड चंदन।

माताजी को पुष्प में कमल व गुलाब प्रिय है। फल में श्रीफल, सीताफल, बेर, अनार व सिंघाड़े प्रिय हैं। सुगंध में केवड़ा, गुलाब, चंदन के इत्र का प्रयोग इनकी पूजा में अवश्य करें। अनाज में चावल तथा मिठाई में घर में बनी शुद्धता पूर्ण केसर की मिठाई या हलवा, शिरा का नैवेद्य उपयुक्त है। प्रकाश के लिए गाय का घी, मूंगफली या तिल्ली का तेल इनको शीघ्र प्रसन्न करता है। अन्य सामग्री में गन्ना, कमल गट्टा, खड़ी हल्दी, बिल्वपत्र, पंचामृत, गंगाजल, ऊन का आसन, रत्न आभूषण, गाय का गोबर, सिंदूर, भोजपत्र का पूजन में उपयोग करना चाहिए।

पर्वोपचार

पूजन शुरू करने से पूर्व चौकी को धोकर उस पर रंगोली बनाएं। चौकी के चारों कोने पर चार दीपक जलाएं। जिस स्थान पर गणेश एवं लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित करनी हो वहां कुछ चावल रखें। इस स्थान पर क्रमशः गणेश और लक्ष्मी की मूर्ति को रखें। अगर कुबेर, सरस्वती एवं काली माता की मूर्ति हो तो उसे भी रखें। लक्ष्मी माता की पूर्ण प्रसन्नता हेतु भगवान विष्णु की मूर्ति लक्ष्मी माता के बायीं ओर रखकर पूजा करनी चाहिए। चौकी पर लक्ष्मी व गणेश की मूर्तियां इस प्रकार रखें कि उनका मुख पूर्व या पश्चिम में रहे। लक्ष्मीजी, गणेशजी की दाहिनी ओर रहें। पूजनकर्ता मूर्तियों के सामने की तरफ बैठें। कलश को लक्ष्मीजी के पास चावलों पर रखें। नारियल को लाल वस्त्र में इस प्रकार लपेटें कि नारियल का अग्रभाग दिखाई देता रहे व इसे कलश पर रखें। यह कलश वरुण का प्रतीक है। दो बड़े दीपक रखें। एक में घी भरें व दूसरे में तेल। एक दीपक चौकी के दाईं

धनतेरस, उद्भव एवं महत्व

जिस प्रकार देवी लक्ष्मी सागर मंथन से उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार भगवान धनवन्तरि भी अमृत कलश के साथ सागर मंथन से उत्पन्न हुए हैं। देवी लक्ष्मी हालांकि की धन देवी हैं परन्तु उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आपको स्वस्थ्य और लम्बी आयु भी चाहिए यही कारण है दीपावली दो दिन पहले से ही यानी धनतेरस से ही दीपामालाएं सजने लगती हें।

कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन ही धन्वन्तरि का जन्म हुआ था इसलिए इस तिथि को धनतेरस के नाम से जाना जाता है। धन्वन्तरी जब प्रकट हुए थे तो उनके हाथो में अमृत से भरा कलश था। भगवान धन्वन्तरि चूंकि कलश लेकर प्रकट हुए थे इसलिए ही इस अवसर पर बर्तन खरीदने की परम्परा है। कहीं कहीं लोकमान्यता के अनुसार यह भी कहा जाता है कि इस दिन धन (वस्तु) खरीदने से उसमें 13 गुणा वृद्धि होती है। इस अवसर पर धनिया के बीज खरीद कर भी लोग घर में रखते हैं। दीपावली के बाद इन बीजों को लोग अपने बाग-बगीचों में या खेतों में बोते हैं।

धनतेरस के दिन चांदी खरीदने की भी प्रथा है। अगर सम्भव न हो तो कोइ बर्तन खरिदे। इसके पीछे यह कारण माना जाता है कि यह चन्द्रमा का प्रतीक है जो शीतलता प्रदान करता है और मन में संतोष रूपी धन का वास होता है। संतोष को सबसे बड़ा धन कहा गया है। जिसके पास संतोष है वह स्वस्थ है सुखी है और वही सबसे धनवान है। भगवान धन्वन्तरि जो चिकित्सा के देवता भी हैं उनसे स्वास्थ्य और सेहत की कामना के लिए संतोष रूपी धन से बड़ा कोई धन नहीं है।

ओर रखें व दूसरा मूर्तियों के चरणों में। इसके अतिरिक्त एक दीपक गणेशजी के पास रखें। मूर्तियों वाली चौकी के सामने छोटी चौकी रखकर उस पर लाल वस्त्र बिछाएं। कलश की ओर एक मुट्ठी चावल से लाल वस्त्र पर नवग्रह की प्रतीक नौ ढेरियां बनाएं। गणेशजी की ओर चावल की सोलह ढेरियां बनाएं। ये सोलह मातृका की प्रतीक हैं। नवग्रह व षोडश मातृका के बीच स्वस्तिक का चिह्न बनाएं। इसके बीच में सुपारी रखें व चारों कोनों पर चावल की ढेरी। सबसे ऊपर बीचोंबीच ? लिखें। छोटी चौकी के सामने तीन थाली व जल भरकर कलश रखें। थालियों की निम्नानुसार व्यवस्था करें-

1. ग्यारह दीपक, 2. खील, बताशे, मिठाई, वस्त्र, आभूषण, चन्दन का लेप, सिन्दूर, कुंकुम, सुपारी, पान, 3. फूल, दुर्वा, चावल, लौंग, इलायची, केसर-कपूर, हल्दी-चूने का लेप,सुगंधित पदार्थ, धूप, अगरबत्ती, एक दीपक।

इन थालियों के सामने यजमान बैठे। आपके परिवार के सदस्य आपकी बाईं ओर बैठें। कोई आगंतुक हो तो वह आपके या आपके परिवार के सदस्यों के पीछे बैठे। आसन बिछाकर गणपति एवं लक्ष्मी की मूर्ति के सम्मुख बैठ जाएं। इसके बाद अपने आपको तथा आसन को मंत्र से शुद्धि करें। हाथ में पूजा के जलपात्र से थोड़ा सा जल ले लें और अब उसे मूर्तियों के ऊपर छिडक़ें। साथ में मंत्र पढ़ें। इस मंत्र और पानी को छिडक़कर आप अपने आपको पूजा की सामग्री को और अपने आसन को भी पवित्र कर लें।

ॐ पवित्रः अपवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तर शुचिः॥
पृथ्विति मंत्रस्य मेरुपृष्ठः ग षिः सुतलं छन्दः
कूर्मोदेवता आसने विनियोगः॥

अब पृथ्वी पर जिस जगह आपने आसन बिछाया है, उस जगह को पवित्र कर लें और मां पृथ्वी को प्रणाम करके मंत्र बोलें-

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥
पृथिव्यै नमः आधारशक्तये नमः

अब आचमन करें

पुष्प, चम्मच या अंजुलि से एक बूंद पानी अपने मुंह में छोडिए और बोलिए-

ॐ केशवाय नमः

और फिर एक बूंद पानी अपने मुंह में छोडिए और बोलिए-

ॐ नारायणाय नमः

फिर एक तीसरी बूंद पानी की मुंह में छोडिए और बोलिए-

ॐ वासुदेवाय नमः

फिर ॐ हृषिकेशाय नमः कहते हुए हाथों को खोलें और अंगूठे के मूल से होंठों को पोंछकर हाथों को धो लें। पुनः तिलक लगाने के बाद प्राणायाम व अंग न्यास आदि करें। आचमन करने से विद्या तत्व, आत्म तत्व और बुद्धि तत्व का शोधन हो जाता है तथा तिलक व अंग न्यास से मनुष्य पूजा के लिए पवित्र हो जाता है। आचमन आदि के बाद आंखें बंद करके मन को स्थिर कीजिए और तीन बार गहरी सांस लीजिए। यानी प्राणायाम कीजिए क्योंकि भगवान के साकार रूप का ध्यान करने के लिए यह आवश्यक है फिर पूजा के प्रारंभ में स्वस्तिवाचन किया जाता है। उसके लिए हाथ में पुष्प, अक्षत और थोड़ा जल लेकर स्वतिनः इंद्र वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए परम पिता परमात्मा को प्रणाम किया जाता है। फिर पूजा का संकल्प किया जाता है। संकल्प हर एक पूजा में प्रधान होता है। शुद्धि और आचमन के बाद चंदन लगाना चाहिए। अनामिका उंगली से श्रीखंड चंदन लगाते हुए यह मंत्र बोलें चन्दनस्य महत्पुण्यम् पवित्रं पापनाशनम्, आपदां हरते नित्यम् लक्ष्मी तिष्ठतु सर्वदा।

दीपावली पूजन हेतु संकल्प

पंचोपचार करने बाद संकल्प करना चाहिए। संकल्प में पुष्प, फल, सुपारी, पान, चांदी का सिक्का, नारियल (पानी वाला), मिठाई, मेवा, आदि सभी सामग्री थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लेकर संकल्प मंत्र बोलें-

ऊं विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, ऊं तत्सदद्य श्री पुराणपुरुषोत्तमस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय पराद्र्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे,अष्टाविंशतितमेक लियुगे, कलिप्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गत ब्रह्मवर्तैकदेशे पुण्य (अपने नगर/गांव का नाम लें) क्षेत्रे बौद्धावतारे वीर विक्रमादित्यनृपते :2070, तमेऽब्दे शोभन नाम संवत्सरे दक्षिणायने/उत्तरायणे हेमंत ऋतो महामंगल्यप्रदे मासानां मासोत्तमे कार्तिक मासे कृष्ण पक्षे अमावस तिथौ (जो वार हो) रवि वासरे स्वाति नक्षत्रे आयुष्मान योग चतुष्पाद करणादिसत्सुशुभे योग (गोत्र का नाम लें) गोत्रोत्पन्नोऽहं अमुकनामा (अपना नाम लें) सकलपापक्षयपूर्वकं सर्वारिष्ट शांतिनिमित्तं सर्वमंगलकामनया-श्रुतिस्मृत्यो- क्तफलप्राप्तर्थं— निमित्त महागणपति नवग्रहप्रणव सहितं कुलदेवतानां पूजनसहितं स्थिर लक्ष्मी महालक्ष्मी देवी पूजन निमित्तं एतत्सर्वं शुभ-पूजोपचारविधि सम्पादयिष्ये।

गणपति पूजन

किसी भी पूजा में सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा की जाती है। इसलिए आपको भी सबसे पहले गणेश जी की ही पूजा करनी चाहिए। हाथ में पुष्प लेकर गणपति का ध्यान करें। मंत्र पढ़ें- गजाननम्भूतगणादिसेवितं कपित्थ जम्बू फलचारुभक्षणम्। उमासुतं शोक विनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्।आवाहनः ऊं गं गणपतये इहागच्छ इह तिष्ठ।। इतना कहकर पात्र में अक्षत छोड़ें।

अर्घा में जल लेकर बोलें- एतानि पाद्याद्याचमनीय-स्नानीयं, पुनराचमनीयम् ऊं गं गणपतये नमः। रक्त चंदन लगाएं: इदम रक्त चंदनम् लेपनम् ऊं गं गणपतये नमः, इसी प्रकार श्रीखंड चंदन

गोवर्धन पूजा

अन्नकूट की अगली सुबह गोवर्धन पूजा की जाती है। इस त्यौहार का भारतीय लोकजीवन में काफी महत्व है। इस पर्व में प्रकृति के साथ मानव का सीधा सम्बन्ध दिखाई देता है। इस पर्व की अपनी मान्यता और लोककथा है। गोवर्धन पूजा में गोधन यानी गायों की पूजा की जाती है। शास्त्रों में बताया गया है कि गाय उसी प्रकार पवित्र होती जैसे नदियों में गंगा। गाय को देवी लक्ष्मी का स्वरूप भी कहा गया है। देवी लक्ष्मी जिस प्रकार सुख समृद्धि प्रदान करती हैं उसी प्रकार गौ माता भी अपने दूध से स्वास्थ्य रूपी धन प्रदान करती हैं। इनका बछड़ा खेतों में अनाज उगाता है। इस तरह गौ सम्पूर्ण मानव जाती के लिए पूजनीय और आदरणीय है। गौ के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए ही कार्तिक शुक्ल पक्ष प्रतिपदा के दिन गोर्वधन की पूजा की जाती है और इसके प्रतीक के रूप में गाय की। जब कृष्ण ने ब्रजवासियों को मूसलधार वर्षा से बचने के लिए सात दिन तक गोवर्धन पर्वत को अपनी सबसे छोटी उँगली पर उठाकर रखा और गोप-गोपिकाएँ उसकी छाया में सुखपूर्वक रहे। सातवें दिन भगवान ने गोवर्धन को नीचे रखा और हर वर्ष गोवर्धन पूजा करके अन्नकूट उत्सव मनाने की आज्ञा दी। तभी से यह उत्सव अन्नकूट के नाम से मनाया जाने लगा।

बोलकर श्रीखंड चंदन लगाएं। इसके पश्चात सिन्दूर चढ़ाएं ₹इदं सिन्दूराभरणं लेपनम् ऊं गं गणपतये नमः। दर्वा और विल्बपत्र भी गणेश जी को चढ़ाएं। गणेश जी को वस्त्र पहनाएं। इदं रक्त वस्त्रं ऊं गं गणपतये समर्पयामि।

पूजन के बाद गणेश जी को प्रसाद अर्पित करें: इदं नानाविधि नैवेद्यानि ऊं गं गणपतये समर्पयामिः। मिष्टान अर्पित करने के लिए मंत्रः इदं शर्करा घृत युक्त नैवेद्यं ऊं गं गणपतये समर्पयामिः। प्रसाद अर्पित करने के बाद आचमन करायें। इदं आचमनयं ऊं गं गणपतये नमः। इसके बाद पान सुपारी चढ़ायें- इदं ताम्बूल पुगीफल समायुक्तं ऊं गं गणपतये समर्पयामिः। अब एक फूल लेकर गणपति पर चढ़ाएं और बोलें- एषः पुष्पान्जलि ऊं गं गणपतये नमः

इसी प्रकार से अन्य सभी देवताओं की पूजा करें। जिस देवता की पूजा करनी हो गणेश के स्थान पर उस देवता का नाम लें।

कलश पूजन

घड़े या लोटे पर मोली बांधकर कलश के ऊपर आम का पल्लव रखें। कलश के अंदर सुपारी, दूर्वा, अक्षत, मुद्रा रखें। कलश के गले में मोली लपेटें। नारियल पर वस्त्र लपेट कर कलश पर रखें। हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर वरूण देवता का कलश में आह्वान करें। ओ3म् त्तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविभिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मान आयुः प्रमोषीः। (अस्मिन कलशे वरुणं सांगं सपरिवारं सायुध सशक्तिकमावाहयामि, ओ3म्भूर्भुवः स्वःभो वरुण इहागच्छ इहतिष्ठ। स्थापयामि पूजयामि॥)

इसके बाद जिस प्रकार गणेश जी की पूजा की है उसी प्रकार वरूण देवता की पूजा करें। इसके बाद देवराज इन्द्र फिर कुबेर की पूजा करें।

लक्ष्मी पूजन

❖ सबसे पहले माता लक्ष्मी का ध्यान करें

ऊँ या सा पद्मासनस्था, विपुल-कटि-तटी,
पद्म-दलायताक्षी।
गम्भीरावर्त-नाभिः, स्तन-भर-नमिता, शुभ्र-वस्त्रोत्तरीया।।
लक्ष्मी दिव्यैर्गजेन्द्रैः।
मणि-गज-खचितैः, स्नापिता हेम-कुम्भैः।
त्यिं सा पद्म-हस्ता, मम वसतु गृहे, सर्व-मांगल्य-युक्ता।।

❖ इसके बाद लक्ष्मी देवी की प्रतिष्ठा करें। हाथ में अक्षत लेकर बोलें –

भूर्भुवः स्वः महालक्ष्मी, इहागच्छ इह तिष्ठ, एतानि पाद्याद्याचमनीय-स्नानीयं, पुनराचमनीयम्।

❖ प्रतिष्ठा के बाद स्नान कराएं:

मन्दाकिन्या समानीतैः हेमाम्भोरुह-वासितैः स्नानं कुरुष्व देवेशि, सलिलं च सुगन्धिभिः।। लक्ष्म्यै नमः।। इदं रक्त चंदनम् लेपनम् से रक्त चंदन लगाएं। इदं सिन्दूराभरणं से सिन्दूर लगाएं। मन्दार-पारिजाताद्यैः, अनेकैः कुसुमैः शुभैः। पूजयामि शिवे, भक्तया, कमलायै नमो नमः।। लक्ष्म्यै नमः,पुष्पाणि समर्पयामि।'इस मंत्र से पुष्प चढ़ाएं फिर माला पहनाएं। अब लक्ष्मी देवी को इदं रक्त वस्त्र समर्पयामि कहकर लाल वस्त्र पहनाएं।

लक्ष्मी देवी की अंग पूजा

बायें हाथ में अक्षत लेकर दायें हाथ से थोड़ा-थोड़ा छोड़ते जायें—

ऊं चपलायै नमः पादौ पूजयामि ऊं चंचलायै नमः जानूं पूजयामि, ऊं कमलायै नमः कटि पूजयामि, ऊं कात्यायिन्यै नमः नाभि पूजयामि, ऊं जगन्मातरे नमः जठरं पूजयामि,ऊं विश्ववल्लभायै नमः वक्षस्थल पूजयामि, ऊं कमलवासिन्यै नमः भुजौ पूजयामि, ऊं कमल पत्राक्ष्य नमः नेत्रत्रयं पूजयामि, ऊं श्रियै नमः शिरः पूजयामि।

हाथ में थोड़ा सा जल ले लीजिए और आह्वान व पूजन मंत्र बोलिए और पूजा सामग्री चढ़ाइए। फिर नवग्रहों का पूजन कीजिए। हाथ में अक्षत और पुष्प ले लीजिए और नवग्रह स्तोत्र बोलिए। इसके बाद भगवती षोडश मातृकाओं का पूजन किया जाता है।

अष्टसिद्धि पूजा

अंग पूजन की भांति हाथ में अक्षत लेकर मंत्रोच्चारण करें।

ऊं अणिम्ने नमः, ओं महिम्ने नमः, ऊं गरिम्णे नमः, ओं लघिम्ने नमः, ऊं प्राप्त्यै नमः ऊं प्राकाम्यै नमः, ऊं ईशितायै नमः ओं वशितायै नमः।

अष्टलक्ष्मी पूजन

अंग पूजन एवं अष्टसिद्धि पूजा की भांति हाथ में अक्षत लेकर मंत्रोच्चारण करें।

ऊं आद्ये लक्ष्म्यै नमः, ओं विद्यालक्ष्म्यै नमः, ऊं सौभाग्य लक्ष्म्यै नमः, ओं अमृत लक्ष्म्यै नमः, ऊं लक्ष्म्यै नमः, ऊं सत्य लक्ष्म्यै नमः, ऊं भोगलक्ष्म्यै नमः, ऊं योग लक्ष्म्यै नमः

नैवैद्य अर्पण

पूजन के पश्चात देवी को ₹इदं नानाविधि नैवेद्यानि ऊं महालक्ष्मियै समर्पयामि₹ मंत्र से नैवैद्य अर्पित करें। मिष्टान अर्पित करने के लिए मंत्रः ₹इदं शर्करा घृत समायुक्तं नैवेद्यं ऊं महालक्ष्मियै समर्पयामि₹ बालें। प्रसाद अर्पित करने के बाद आचमन करायें। इदं आचमनयं ऊं महालक्ष्मियै नमः। इसके बाद पान सुपारी चढ़ायें: इदं ताम्बूल पुगीफल समायुक्तं ऊं महालक्ष्मियै समर्पयामि। अब एक फूल लेकर लक्ष्मी देवी पर चढ़ाएं और बोलें: एषः पुष्पान्जलि ऊं महालक्ष्मियै नमः।

लक्ष्मी देवी की पूजा के बाद भगवान विष्णु एवं शिव जी पूजा करनी चाहिए फिर गल्ले की पूजा करें। पूजन के पश्चात सपरिवार आरती और क्षमा प्रार्थना करें-

क्षमा प्रार्थना

न मंत्रं नोयंत्रं तदपिच नजाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपिच नजाने स्तुतिकथाः।
नजाने मुद्रास्ते तदपिच नजाने विलपनं
परं जाने मातस्त्व दनुसरणं क्लेशहरणं

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्याच्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षंतव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः संति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोहं तव सुतः
मदीयोयंत्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापित्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदप कुमाता न भवति

परित्यक्तादेवा विविध सेवाकुलतया
मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि
इदानींचेन्मातः तव यदि कृपा
नापि भविता निरालंबो लंबोदर जननि कं यामि शरणं

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातंको रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ

चिताभस्म लेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कंठे भुजगपतहारी पशुपतिः
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदं

न मोक्षस्याकांक्षा भवविभव वांछापिचनमे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः
अतस्त्वां सुयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडाणी रुद्राणी शिवशिव भवानीति जपतः

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिंतन परैर्नकृतं वचोभिः
श्यामे त्वमेव यदि किंचन मय्यनाधे
धत्से कृपामुचितमंब परं तवैव

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि
नैतच्छदत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरंति

जगदंब विचित्रमत्र किं
परिपूर्ण करुणास्ति चिन्मयि
अपराधपरंपरावृतं नहि माता
समुपेक्षते सुतं

मत्समः पातकी नास्ति
पापघ्नी त्वत्समा नहि
एवं ज्ञात्वा महादेवि
यथायोग्यं तथा कुरु।

महालक्ष्मी मन्त्र

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मयै नमः॥

27 अक्टूबर, 2019 दिपावली पूजन मुहूर्त

श्री महालक्ष्मी पूजन व दीपावली का महापर्व कार्तिक कृष्ण पक्ष की अमावस्या में प्रदोष काल, स्थिर लग्न समय में मनाया जाता है. धन की देवी श्री महा लक्ष्मी जी का आशिर्वाद पाने के लिये इस दिन लक्ष्मी पूजन करना विशेष रुप से शुभ रहता है.

वर्ष 2019 में दिपावली, 27 अक्टूबर, रविवार के दिन की रहेगी. इस दिन चित्रा नक्षत्र रात्रि 27:17 तक रहेगा. इस दिन विष्कुम्भ योग तथा चन्दमा तुला राशि में 16:32 मिनिट पर प्रवेश करेगा. दीपावली में अमावस्या तिथि, प्रदोष काल, शुभ लग्न व चौघाडिया मुहूर्त विशेष महत्व रखते है. दिपावली व्यापारियों, क्रय-विक्रय करने वालों के लिये विशेष रुप से शुभ मानी जाती है.

प्रदोष काल मुहूर्त कब

27 अक्टूबर 2019, रविवार के दिन दिल्ली तथा आसपास के इलाकों में 17:40 से 20:16 तक प्रदोष काल रहेगा. इसे प्रदोष काल का समय कहा जाता है. प्रदोष काल समय को दिपावली पूजन के लिये शुभ मुहूर्त के रुप में प्रयोग किया जाता है. प्रदोष काल में भी स्थिर लग्न समय सबसे उतम रहता है. इस दिन 18:44 से 20:39 के दौरान वृष लग्न रहेगा. प्रदोष काल व स्थिर लग्न दोनों रहने से मुहुर्त शुभ रहेगा. .

प्रदोष काल का प्रयोग कैसे करें

प्रदोष काल में मंदिर में दीपदान, रंगोली और पूजा से जुडी अन्य तैयारी इस समय पर कर लेनी चाहिए तथा मिठाई वितरण का कार्य भी इसी समय पर संपन्न करना शुभ माना जाता है। इसके अतिरिक्त द्वार पर स्वास्तिक और शुभ लाभ लिखने का कार्य इस मुहूर्त समय पर किया जा सकता है. इसके अतिरिक्त इस समय पर अपने मित्रों व परिवार के बडे सदस्यों को उपहार देकर आशिर्वाद लेना व्यक्ति के जीवन की शुभता में वृद्धि करता है. मुहूर्त समय में धर्मस्थलो पर दानादि करना कल्याणकारी होगा.

निशिथ काल

निशिथ काल में स्थानीय प्रदेश समय के अनुसार इस समय में कुछ मिनट का अन्तर हो सकता है. 27 अक्टूबर को 20:16 से 22:52 तक निशिथ काल रहेगा. निशिथ काल में 17:40 से 19:18 तक की शुभ उसके बाद अमृत की चौघडिया रहेगी, ऐसे में व्यापारियों वर्ग के लिये लक्ष्मी पूजन के लिये इस समय की अनुकूलता रहेगी.

दिपावली पूजन में निशिथ काल का प्रयोग कैसे करें

धन लक्ष्मी का आहवाहन एवं पूजन, गल्ले की पूजा तथा हवन इत्यादि कार्य सम्पूर्ण कर लेना चाहिए. इसके अतिरिक्त समय का प्रयोग श्री महालक्ष्मी पूजन, महाकाली पूजन, लेखनी, कुबेर पूजन, अन्य मंन्त्रों का जपानुष्ठान करना चाहिए.

महानिशीथ काल

धन लक्ष्मी का आहवाहन एवं पूजन, गल्ले की पूजा तथा हवन इत्यादि कार्य सम्पूर्ण कर लेना चाहिए. इसके अतिरिक्त समय का प्रयोग श्री महालक्ष्मी पूजन, महाकाली पूजन, लेखनी, कुबेर पूजन, अन्य मंन्त्रों का जपानुष्ठान करना चाहिए.

27 अक्टूबर 2019 के रात्रि में 22:52 से 25:28 मिनट तक महानिशीथ काल रहेगा. इस समय के दौरान रोग और काल की चौघडियां अनुकूल नहीं हैं. लेकिन 22:51 से 25:14 तक के समय में कर्क लग्न और सिंह लग्न होना शुभस्थ है. इसलिए उक्त चौघडियों को भुलाकर यदि कोई कार्य प्रदोष काल अथवा निशिथकल में शुरु करके इस महानिशीथ काल में संपन्न हो रहा हो तो भी वह अनुकूल ही माना जाता है. महानिशिथ काल में पूजा समय चर लग्न में कर्क लग्न उसके बाद स्थिर लग्न सिंह लग्न भी हों, तो विशेष शुभ माना जाता है. महानिशीथ काल में कर्क लग्न और सिंह लग्न होने के कारण यह समय शुभ हो गया है. जो शास्त्रों के अनुसार दिपावली पूजन करना चाहते हो, वह इस समयावधि को पूजा के लिये प्रयोग कर सकते हैं .

महानिशीथ काल का दिपावली पूजन में प्रयोग कैसे करें

महानिशीथकाल में मुख्यतः तांत्रिक कार्य, ज्योतिषविद, वेद् आरम्भ, कर्मकाण्ड, अघोरी,यंत्र-मंत्र-तंत्र कार्य व विभिन्न शक्तियों का पूजन करते हैं एवं शक्तियों का आवाहन करना शुभ रहता है. अवधि में दीपावली पूजन के पश्चात गृह में एक चौमुखा दीपक रात भर जलता रहना चाहिए. यह दीपक लक्ष्मी एवं सौभाग्य में वृद्धि का प्रतीक माना जाता है.

चौघडिया -

17:40 से 19:18 तक शुभ

19:10 से 21:00 तक अमृत

21:00 से 22:30 तक चर

अच्छा है एक दीप जला लें...

राघवेंद्र प्रसाद मिश्र

भारतीय संस्कृति का कोई भी पर्व हो वह कुछ न कुछ संदेश लेकर आता है। शरद ऋतु में पडने वाला रोशनी का पर्व दीपावली त्योहार एक बार भी नई उमंग व उत्साह को लेकर आया है। यूं तो देश का यह सबसे प्राचीन त्योहार माना जाता है पर समय के हिसाब से इस त्योहार में भी काफी परिवर्तन आ गए हैं।

“अक्सर लोग यह कहते नजर आ जाते हैं कि इस बार त्योहार पर पहले जैसी रौनक नहीं रही। जबकि सच यह है कि पहले जैसे जब हम त्योहार को न जानते हैं और न समझते हैं तो पहले जैसी रौनक कहा से आएगी। वर्तमान समय के अधिकत्तर युवा पीढ़ी के पास दीपावली क्यों मनाते हैं इसका जवाब ही नहीं है। भगवान राम किसके बेटे थे इसकी जानकारी उन्हें नहीं है? भगवान राम कितने भाई थे उन्हें नहीं मालूम? रावण को किसने मारा था यह उन्हें बताने वाला भी नहीं है? ऐसे में किस तरह के त्योहार मनाने की बात हम कर सकते हैं।”

कथा व शास्त्रों के अनुसार भगवान राम जब अहंकार के रावण को मार कर चौदह वर्ष के वनवास को पूरा कर आयोध्या वापस लौटे थे तो उनके वापसी के उपलक्ष्य में खुशी दिये जलाए गए थे। तभी से दीपावली का शुभारंभ माना जाता है। देश के अलग-अलग हिस्सों में इस पर्व को मनाने की अपनी विधा है। गांवों में लोग इस दिन घी के दिये जला कर माता लक्ष्मी का पूजन-अर्चन करते हैं। ऐसा माना जाता है इस दिन माता लक्ष्मी धरती पर अवतरित होती हैं और भक्तों पर अपनी कृपा बरसाती हैं।

मान्यता के हिसाब से इस त्यौहार पर अधिकतर लोग अपने अंदर व्याप्त किसी न किसी बुराई को त्यागने का संकल्प लेते हैं। यह सब मान्यता की बात है, लेकिन सच्चाई पर बात करें तो अधुनिकता के रंग में यह त्यौहार इतना रंग गया है कि अपना मूल रूप ही खो चुका है। इस पर्व पर सालभर में कम से कम एक बार इस दिन लोग अपने घरों व आस-पास की सफाई करते थे, जिससे वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता था। अब न कच्चे घर रहे और न ही वो परंपराएं बची हैं। घरों की लिपाई-पुताई से चूनाकारी होते हुए अब पेंट होने लगे हैं। जो एक बार लगाने से कई वर्षों तक चलते हैं। इससे इस त्यौहार में जो नयापन दिखता था वह कहीं गुम सा नजर आ रहा है। घी के दियों की जगह अब चाइनीज

झालरों ने ले लिया है। वैसे परंपराएं केवल गांव में बची थीं, लेकिन देखते ही देखते गांव खत्म हुए तो परंपराएं व मान्यताएं भी टूट गईं। सभी ने अपने हिसाब से त्यौहारों को अपने में ढाल लिया। शायद यही वजह है कि रोशनी के इस पर्व में अब पहले जैसी रौनक नहीं दिखती।

कवि गोपाल दास नीरज की कविता- 'जलाओं दिये पर रहे ध्यान इतना, अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।' इसका भाव बहुत सुंदर था। नीरज जी कविता के माध्यम से मन के अंदर के अंधकार को दूर करने संदेश देने का पूरा प्रयास किया था। क्योंकि अगर मन के अंदर अंधकार व्याप्त है तो दुनिया कितनी भी रंगीन क्यों न हो बदरंग ही नजर आएगी। दीपावली पर एक और श्लोगन खूब चलता है- अंधकार को क्यों धिक्कारे, अच्छा है एक दीप जला लें। इस श्लोगन का भी भाव काफी बड़ा है। ठहराव की जगह सार्थक दिशा में आगे बढने का संदेश देता हुआ यह श्लोगन जिंदगी में बेहतरी के नजरिये को दर्शाता है। इन सबके बीच सवाल यह उठता है कि त्यौहार तो हम अपने हिसाब से मना लेंगे पर उससे जुड़ी मान्यताओं को भी बदल लेंगे क्या? अक्सर लोग यह कहते नजर आ जाते हैं कि इस बार त्यौहार पर पहले जैसी रौनक नहीं रही। जबकि सच यह है कि पहले जैसे जब हम त्यौहार को न जानते हैं और न समझते हैं तो पहले जैसी रौनक कहा से आएगी। वर्तमान समय के अधिकत्तर युवा पीढ़ी के पास दीपावली क्यों मनाते हैं इसका जवाब ही नहीं है। भगवान राम किसके बेटे थे इसकी जानकारी उन्हें नहीं है? भगवान राम कितने भाई थे उन्हें नहीं मालूम? रावण को किसने मारा था यह उन्हें बताने वाला भी नहीं है? ऐसे में किस तरह के त्यौहार मनाने की बात हम कर सकते हैं। यही कारण है कि अब त्यौहारों में उमंग की जगह हुडदंग ज्यादा हो रहा है। इसका सारा दोष युवा पीढ़ी को भी नहीं दिया जा सकता। इसके लिए घर व समाज के बड़े-बूढ़े कम जिम्मेदार नहीं हैं। क्योंकि इस पीढ़ी को सही रास्ता दिखाने वालों ने उन्हें सद्मार्ग पर चलना सिखाया ही नहीं। जैसे-जैसे लोग शिक्षित हुए वैसे-वैसे वह परिवार और समाज से कटते चले गए। स्कूलों की किताबों से पर्व, धर्म और त्यौहारों पर आधारित कहानियां गायब सी हो गईं। युवा पीढ़ी को धर्म-अध्यात्म से जुड़ी बातें बाताने वाले अम्मा-बाबा अब दादा-दादी बन गए हैं। गृहस्थी से ज्यादा नौकरी की पीछे भागने वाले परिवार व बच्चों को समय ही नहीं दे रहे हैं। ऐसे में इस पीढ़ी को धार्मिक कहानियां कौन सुनाए?

फिलहाल सार्थकता की शुरुआत हम कभी भी, कहीं से भी कर सकते हैं। इस बार दीपावली पर्व पर यह जानने की कोशिश करें कि रोशनी का यह पर्व कब और क्यों मनाया जाता है? इसका धार्मिक और पौराणिक महत्व क्या है? इस पर्व पर घी के दीपक क्यों जलाए जाते हैं? यकीन मानिए जब हम अपने त्यौहार, उत्सव के बारे में पूरी तरह से जानेंगे तो हुड़दंग की जगह उमंग को स्थान मिलेगा और बदलते परिवेश में भी त्यौहारों का आनंद भी आएगा।

●●●

धन्वन्तरि : आयुर्वेद के देव

संजय मानव

धन्वन्तरि सनातन संस्कृति में एक देवता हैं। वे महान चिकित्सक थे जिन्हें देव पद प्राप्त हुआ। हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार ये भगवान विष्णु के अवतार समझे जाते हैं। इनका पृथ्वी लोक में अवतरण समुद्र मंथन के समय हुआ था।

शरद पूर्णिमा को चंद्रमा, कार्तिक द्वादशी को कामधेनु गाय, त्रयोदशी को धन्वंतरी, चतुर्दशी को काली माता और अमावस्या को भगवती लक्ष्मी जी का सागर से प्रादुर्भाव हुआ था। इसीलिये दीपावली के दो दिन पूर्व धनतेरस को भगवान धन्वंतरी का जन्म धनतेरस के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन इन्होंने आयुर्वेद का भी प्रादुर्भाव किया था। इन्हें भगवान विष्णु का रूप कहते हैं जिनकी चार भुजायें हैं। उपर की दोंनों भुजाओं में शंख और चक्र धारण किये हुये हैं। जबकि दो अन्य भुजाओं मे से एक में जलूका और औषध तथा दूसरे मे अमृत कलश लिये हुये हैं। इनका प्रिय धातु पीतल माना जाता है। इसीलिये धनतेरस को पीतल आदि के बर्तन खरीदने की परंपरा भी है। इन्हे आयुर्वेद की चिकित्सा करनें वाले वैद्य आरोग्य का देवता कहते हैं। इन्होंने ही अमृतमय औषधियों की खोज की थी। इनके वंश में दिवोदास हुए जिन्होंने 'शल्य चिकित्सा' का विश्व का पहला विद्यालय काशी में स्थापित किया जिसके प्रधानाचार्य सुश्रुत बनाये गए थे। सुश्रुत दिवोदास के ही शिष्य और ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे। उन्होंने ही सुश्रुत संहिता लिखी थी। सुश्रुत विश्व के पहले सर्जन (शल्य चिकित्सक) थे। दीपावली के अवसर पर कार्तिक त्रयोदशी-धनतेरस को भगवान धन्वंतरि की पूजा करते हैं। कहते हैं कि शंकर ने विषपान किया, धन्वंतरि ने अमृत प्रदान किया और इस प्रकार काशी कालजयी नगरी बन गयी।

आयुर्वेद के संबंध में सुश्रुत का मत है कि ब्रह्माजी ने पहली बार एक लाख श्लोक के, आयुर्वेद का प्रकाशन किया था जिसमें एक सहस्र अध्याय थे। उनसे प्रजापति ने पढ़ा तदुपरांत उनसे अश्विनी कुमारों ने पढ़ा और उन से इन्द्र ने पढ़ा। इन्द्रदेव से धन्वंतरि ने पढ़ा और उन्हें सुन कर सुश्रुत मुनि ने आयुर्वेद की रचना की। भावप्रकाश के अनुसार आत्रेय प्रमुख मुनियों ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर उसे अग्निवेश तथा अन्य शिष्यों को दिया।

आयुर्वेद के संबंध में सुश्रुत का मत है कि ब्रह्माजी ने पहली बार एक लाख श्लोक के, आयुर्वेद का प्रकाशन किया था जिसमें एक सहस्र अध्याय थे। उनसे प्रजापति ने पढ़ा तदुपरांत उनसे अश्विनी कुमारों ने पढ़ा और उन से इन्द्र ने पढ़ा। इन्द्रदेव से धन्वंतरि ने पढ़ा और उन्हें सुन कर सुश्रुत मुनि ने आयुर्वेद की रचना की। भावप्रकाश के अनुसार आत्रेय प्रमुख मुनियों ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर उसे अग्निवेश तथा अन्य शिष्यों को दिया।

विध्यातार्थव सर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्ष श्लोकमयीमृजुम्।।

इसके उपरान्त अग्निवेश तथा अन्य शिष्यों के तन्त्रों को संकलित तथा प्रतिसंस्कृत कर चरक द्वरा 'चरक संहिता' के निर्माण का भी आख्यान है। वेद के संहिता तथा ब्राह्मण भाग में धन्वंतरि का कहीं नामोल्लेख भी नहीं है। महाभारत तथा पुराणों में विष्णु के अंश के रूप में उनका उल्लेख प्राप्त होता है। उनका प्रादुर्भाव समुद्रमंथन के बाद निर्गत कलश से अण्ड के रूप मे हुआ। समुद्र के निकलने के बाद उन्होंने भगवान विष्णु से कहा कि लोक में मेरा स्थान और भाग निश्चित कर दें। इस पर विष्णु ने कहा कि यज्ञ का विभाग तो देवताओं में पहले ही हो चुका है अतः यह अब संभव नहीं है। देवों के बाद आने के कारण तुम (देव) ईश्वर नहीं हो। अतः

तुम्हें अगले जन्म में सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और तुम लोक में प्रसिद्ध होगे। तुम्हें उसी शरीर से देवत्व प्राप्त होगा और द्विजातिगण तुम्हारी सभी तरह से पूजा करेंगे। तुम आयुर्वेद का अष्टांग विभाजन भी करोगे। द्वितीय द्वापर युग में तुम पुनः जन्म लोगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस वर के अनुसार पुत्रकाम काशिराज धन्व की तपस्या से प्रसन्न हो कर अब्ज भगवान ने उसके पुत्र के रूप में जन्म लिया और धन्वंतरि नाम धारण किया। धन्व काशी नगरी के संस्थापक काश के पुत्र थे। वे सभी रोगों के निवराण में निष्णात थे। उन्होंने भरद्वाज से आयुर्वेद ग्रहण कर उसे अष्टांग में विभक्त कर अपने शिष्यों में बाँट दिया। धन्वंतरि की परम्परा इस प्रकार है -

काश-दीर्घतपा-धन्व-धन्वंतरि-केतुमान्-भीमरथ(भीमसेन)-दिवोदास-प्रतर्दन-वत्स-अलर्क।

यह वंश-परम्परा हरिवंश पुराण के आख्यान के अनुसार है। विष्णुपुराण में यह थोड़ी भिन्न है-

काश-काशेय-राष्ट्र-दीर्घतपा-धन्वंतरि-केतुमान्-भीरथ-दिवोदास।

महिमा

वैदिक काल में जो महत्व और स्थान अश्विनी को प्राप्त था वही पौराणिक काल में धन्वंतरि को प्राप्त हुआ। जहाँ अश्विनी के हाथ में मधुकलश था वहाँ धन्वंतरि को अमृत कलश मिला, क्योंकि विष्णु संसार की रक्षा करते हैं अतः रोगों से रक्षा करने वाले धन्वंतरि को विष्णु का अंश माना गया। विषविद्या के संबंध में कश्यप और तक्षक का जो संवाद महाभारत में आया है, वैसा ही धन्वंतरि और नागदेवी मनसा का ब्रह्मवैवर्त पुराण में आया है। उन्हें गरुड़ का शिष्य कहा गया है -

सर्ववेदेषु निष्णातो मन्त्रतन्त्र विशारदः।
शिष्यो हि वैनतेयस्य शंकरोस्योपशिष्यकः।।

मंत्र

भगवाण धन्वंतरी की साधना के लिये एक साधारण मंत्र है:

ॐ धन्वंतरये नमः॥

इसके अलावा उनका एक और मंत्र भी है:

ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय वासुदेवाय धन्वंतराये: अमृत कलश हस्ताय सर्वभय विनाशाय सर्वरोगनिवारणायत्रिलोकपथाय त्रिलोकनाथाय श्री महाविष्णुस्वरूपश्री धन्वंतरी स्वरूप श्री श्री श्री औषधचक्र नारायणाय नमः॥

ॐ नमो भगवते धन्वन्तरये अमृत कलश हस्ताय सर्व आमयविनाशनाय त्रिलोक नाथाय श्री महाविष्णुवे नमः ।।

अर्थातपरम भगवन को, जिन्हें सुदर्शन वासुदेव धन्वंतरी कहते हैं, जो अमृत कलश लिये हैं, सर्वभय नाशक हैं, सररोग नाश करते हैं, तीनों लोकों के स्वामी हैं और उनका निर्वाह करने वाले हैं; उन विष्णु स्वरूप धन्वंतरी को नमन है।

धन्वंतरी स्तोत्रम

प्रचलि धन्वंतरी स्तोत्र इस प्रकार से है।

ॐ शंखं चक्रं जलौकां दधदमृतघटं चारुदोर्भिश्चतुर्भिः
सूक्ष्मस्वच्छातिहृद्यांशुक परिविलसन्मौलिमंभोजनेत्रम॥
कालाम्भोदोज्ज्वलांगंकटितटविलसच्चारूपी तांबराढ्यम।
वन्दे धन्वंतरिं तं निखिलगदवनप्रौढदावाग्निलीलम॥

अवतरण

देवता एवं दैत्यों के सम्मिलित प्रयास के श्रान्त हो जाने पर समुद्र मन्थन स्वयं क्षीर-सागरशायी कर

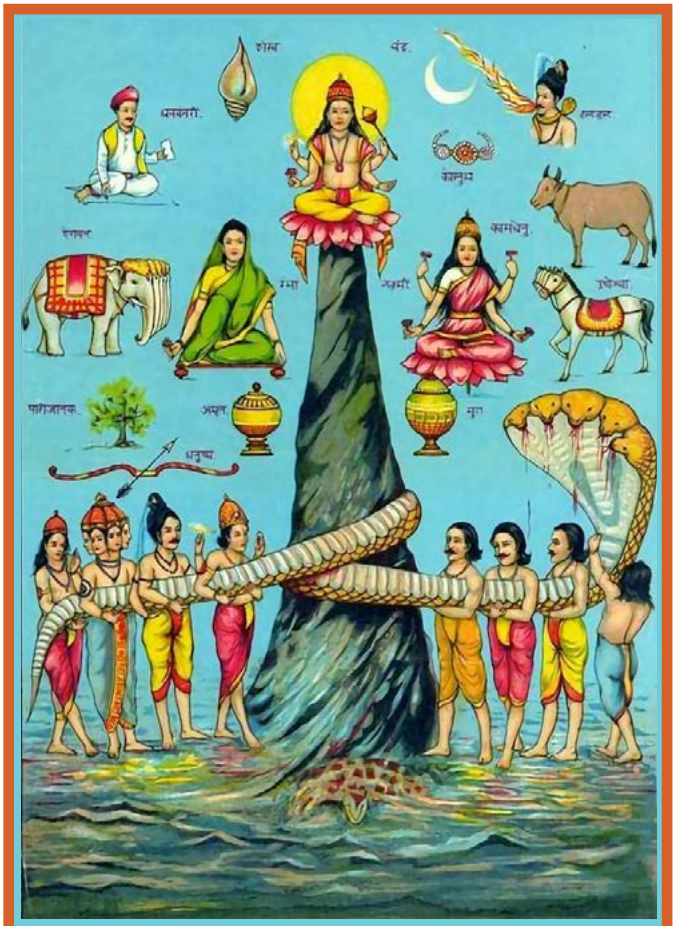

ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय वासुदेवाय धन्वंतरायेः
अमृतकलश हस्ताय सर्वभय विनाशाय सर्वरोगनिवारणाय
त्रिलोकपथाय त्रिलोकनाथाय श्री महाविष्णुस्वरूप
श्री धन्वंतरी स्वरूप श्री श्री श्री अष्टचक्र नारायणाय नमः॥

रहे थे। हलाहल, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, महाशंख, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी और कदली वृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अन्त में हाथ में अमृतपूर्ण स्वर्ण कलश लिये श्याम वर्ण, चतुर्भुज भगवान धन्वन्तरि प्रकट हुए। अमृत-वितरण के पश्चात् देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर भगवान धन्वन्तरि ने देव-वैद्य का पद स्वीकार कर लिया। अमरावती उनका निवास बनी। कालक्रम से पृथ्वी पर मनुष्य रोगों से अत्यन्त पीड़ित हो गये। प्रजापति इन्द्र ने धन्वन्तरि जी से प्रार्थना की। भगवान ने काशी के राजा दिवोदास के रूप में पृथ्वी पर अवतार धारण किया। इनकी 'धन्वन्तरि-संहिता' आयुर्वेद का मूल ग्रन्थ है। आयुर्वेद के आदि आचार्य सुश्रुत मुनि ने धन्वन्तरि जी से ही इस शास्त्र का उपदेश प्राप्त किया था।

पौराणिक उल्लेख

भगवान धन्वन्तरि को आयुर्वेद के प्रणेता तथा वैद्यक शास्त्र के देवता के रूप में जाना जाता है। आदिकाल में आयुर्वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही मानते हैं। आदिकाल के ग्रंथों में 'रामायण'-'महाभारत' तथा विविध पुराणों की रचना हुई, जिसमें सभी ग्रंथों ने 'आयुर्वेदावतरण' के प्रसंग में भगवान धन्वन्तरि का उल्लेख किया है। धन्वन्तरि प्रथम तथा द्वितीय का वर्णन पुराणों के अतिरिक्त आयुर्वेद ग्रंथों में भी छुट-पुट रूप से मिलता है, जिसमें आयुर्वेद के आदि ग्रंथों 'सुश्रुत्रसंहिता', 'चरकसंहिता', 'काश्यप संहिता' तथा 'अष्टांग हृदय' में उनका विभिन्न रूपों में उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदिक ग्रंथों- 'भाव प्रकाश', 'शार्गधर' तथा उनके ही समकालीन अन्य ग्रंथों में 'आयुर्वेदावतरण' का प्रसंग उधृत है। इसमें भगवान धन्वन्तरि के संबंध में भी प्रकाश डाला गया है। महाकवि व्यास द्वारा रचित 'श्रीमद्भावत पुराण' के अनुसार धन्वन्तरि को भगवान विष्णु का अंश माना गया है तथा अवतारों में अवतार कहा गया है। 'महाभारत', 'विष्णुपुराण', 'अग्निपुराण', 'श्रीमद्भागवत' महापुराणादि में यह उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि देवता और असुर एक ही पिता कश्यप ऋषि के संतान थे। किंतु इनकी वंश वृद्धि बहुत अधिक हो गई थी। अतः ये अपने अधिकारों के लिए परस्पर आपस में लड़ा करते थे। वे तीनों ही लोकों पर राज्याधिकार प्राप्त करना चाहते थे। असुरों या राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य थे, जो संजीवनी विद्या जानते थे और उसके बल से असुरों को पुनः जीवित कर सकते थे। इसके अतिरिक्त दैत्य, दानव आदि माँसाहारी होने के कारण हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ तथा दिव्य शस्त्रों के ज्ञाता थे। अतः युद्ध में असुरों की अपेक्षा देवताओं की मृत्यु अधिक होती थी।

पुरादेवऽसुरायुद्धेहताश्चशतशोसुराः।
हेन्यामान्यास्ततो देवाः शतशोऽथसहस्त्रशः।

'गरुड़पुराण' और 'मार्कण्डेयपुराण' के अनुसार वेद मंत्रों से अभिमंत्रित होने के कारण ही धन्वन्तरि वैद्य कहलाए थे। 'विष्णुपुराण' के अनुसार धन्वन्तरि दीर्घतथा के पुत्र बताए गए हैं। इसमें बताया गया है वह धन्वन्तरि जरा विकारों से रहित देह और इंद्रियों वाला तथा सभी जन्मों में सर्वशास्त्र ज्ञाता है। भगवान नारायण ने उन्हें पूर्वजन्म में यह वरदान दिया था कि काशिराज के वंश में उत्पन्न होकर आयुर्वेद के आठ भाग करोगे और यज्ञ भाग के भोक्ता बनोगे। इस प्रकार धन्वन्तरि की तीन रूपों में उल्लेख मिलता है-

समुद्र मन्थन से उत्पन्न धन्वन्तरि प्रथम
धन्व के पुत्र धन्वन्तरि द्वितीय
काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि तृतीय

●●●

प्रकृति का पर्व छठ

सनातन का लोक और वेद पर्व भी

अजित दूबे

यह मूलरूप से सनातन का वेद पर्व है। वेद के प्रतिपाद्य देवता नारायण हैं। वेदमाता के रूप में स्थापित गायत्रीमंत्र के प्रतिपाद्य देवता भी वही नारायण हैं। गायत्री मन्त्र के – तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदिवस्य – में जो सविता देवता हैं वह भगवान् सूर्य के आभामंडल के केंद्र में विराजमान भगवान् नारायण ही हैं। उन्ही को समग्र रूप में सूर्यनारायण कहा जाता हैं। इसी क्रम में छठ पर्व के भी प्रतिपाद्य देवता भगवान् नारायण ही हैं। इस प्रकार यह व्यापक फलक पर वेद पर्व ही है जो लोकजीवन में अति पावन स्वरुप में सदियों से मनाया जा रहा है।

यह पूर्णतः प्रकृति पर्व है। प्रकृति से इतर इसमें कुछ भी मान्य नहीं। पूजा की सामग्री भी विशुद्ध प्राकृतिक। गन्ना, मूली, केला, बोरो, सिंघाड़ा, शरीफा, नारियल, हल्दी, अदरक, गुड़, रसियाव, गुलगुला, ठेकुआ,धूप, दीप, नैवेद्य। पूजास्थल भी कोई मंदिर नहीं। केवल किसी जलाशय या नदी का तट। इसमें कुछ भी कृतिम नहीं है। सभी कुछ मूल प्रकृति के भाव में ही है। आरती, पूजा, आराधना, साधना और संसाधन तक सब के मूल प्राकृतिक रूप ही यहाँ प्रयुक्त हो रहे हैं। सबसे खास पक्ष यह कि इसमें किसी जाति, पंथ या मजहब को कही मनाही नहीं है। लोक का प्रत्येक अवयव, प्रत्येक समुदाय इसे एक हो स्वरुप में मना सकता है।

जिस स्वच्छता को लेकर आज देश की सरकार ने अपनी पूरी ताकत लगा रखी है, सोचिये कि बिना किसी सरकारी योजना के वह स्वच्छता अभियान हर साल छठपूजा के समय हमारे लोकजीवन में सदियों से चलता रहा है। छठ का खयाल आते ही मन के किसी कोने से आध्यात्म की सरिता फूट पड़ती है। पर छठ की यही महिमा है किइस आध्यात्म की धारा निराकार या अलौकिक न होकर लौकिक हो जाती है। प्रकृति की प्रतिष्ठा को स्थापित करनेवाला यह त्यौहार पर्यावरण को बचाने-संवारने को प्रेरित करता है।

पौराणिक घटनाओं से जुड़ी कथाओं के अनुसार प्रथम देवासुर संग्राम में जब देवता असुरों से हार गये थे, तो देव माता अदिति ने दानव जेता तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए देवारण्य में देव सेना छठी मैया की आराधना की थीं. उनकी आराधना से प्रसन्न होकर छठी मैया ने सर्वगुण संपन्न तेजस्वी पुत्र होने का उन्हें वरदान दिया था। षष्ठी देवी के वरदान से ही अदिति के पुत्र हुए त्रिदेव रूप आदित्य भगवान, जिन्होंने आगे चल कर दानवों पर देवताओं को विजयश्री दिलायी। तभी से देव सेना षष्ठी देवी के नाम पर इस धाम का नाम देव हुआ। कहते हैं कि तभी यहां छठ का चलन भी शुरू हो गया। हालांकि एक मान्यता यह भी है कि इस जगह का नाम कभी यहां के राजा रहे वृषपर्वा के पुरोहित शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के नाम पर देव पड़ा था। एक जानकारी यह भी है कि सतयुग में इक्ष्वाकु के पुत्र व अयोध्या के निर्वासित राजा ऐल एक बार देवारण्य (देव इलाके में तब स्थित जंगलों में) में शिकार खेलने आये थे। वह कुष्ठ रोग से पीड़ित व परेशान थे।

शिकार खेलने आये राजा ने जब यहां के एक पुराने पोखरे के जल से प्यास बुझायी और स्नान किया, तो उनका कोढ़ ठीक हो गया। वह इस चमत्कार पर हैरान थे। बाद में उन्होंने स्वप्न में देखा कि त्रिदेव रूप आदित्य उसी पुराने पोखरे में हैं, जिसके पानी से उनका रोग ठीक हुआ था। यह एहसास होते ही राजा ऐल ने देव में एक सूर्य मठ का निर्माण कराया। उसी पुराने पोखरे में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शिव की मूर्तियां भी मिलीं।

बाद में अपने बनवाये मठ में इन मूर्तियों को स्थान देते हुए उन्होंने त्रिदेव स्वरूप आदित्य भगवान को स्थापित कर दिया। राजा ऐल के

पानी में खड़े होकर सूर्य को अर्घ देने से शरीर को प्राकृतिक तौर में कई चीजें मिल जाती हैं। पानी में खड़े होकर अर्घ देने से टॉक्सिफिकेशन होता है जो शरीर के लिए फायदेमंद होता है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि सूर्य की किरणों में कई ऐसे तत्व होते हैं तो प्रकृति के साथ सभी जीवों के लिए लाभदायक होते हैं। ऐसा माना जाता है कि सूर्य को अर्घ देने के क्रम में सूर्य की किरणें परावर्तित होकर आंखों पर पड़ती हैं। इससे स्नायुतंत्र सक्रिय हो जाता है और व्यक्ति खुद को ऊर्जान्वित महसूस करता है।

साथ हुई घटनाओं की समाज में काफी चर्चा हुई और साथ-साथ यहां भगवान सूर्य की पूजा-अराधना भी शुरू हो गयी, जो आगे चल कर छठ के व्यापक आयोजन के रूप में सामने आया।

देव के बारे में एक अन्य लोककथा में सुना जाता है कि एक बार भगवान शिव के भक्त माली व सोमाली सूर्यलोक जा रहे थे। यह बात सूर्य को रास नहीं आयी। उन्होंने इन शिवभक्तों को जलाना शुरू कर दिया। अपनी अवस्था खराब देख माली व सोमाली ने भगवान शिव से बचाने की अपील की। फिर क्या था, भगवान शिव अपने भक्तों की अवस्था पर नाराज हो गये। उन्होंने सूर्य को मार गिराया. तब सूर्य तीन टुकड़ों में पृथ्वी पर गिरे थे। जहां सूर्य के टुकड़े गिरे, उन्हें देवार्क, लोलार्क (काशी के पास) और कोणार्क के नाम से जाना जाता था।

प्रकृति के करीब पहुंचाती है पूजा मन व शरीर होता है स्वस्थ धार्मिक महत्व के साथ छठ का वैज्ञानिक महत्व भी कम नहीं है। इस पर्व का प्रकृति के साथ सबसे करीबी रिश्ता माना जाता है। सूर्य को अर्घ देने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला हल्दी, अदरक, मूली और गाजर जैसे फल-फूल स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होते हैं।

यही ऐसा त्यौहार है तो सामूहिक रूप से लोगों को स्वच्छता की ओर उन्मुख करता है। यही नहीं, प्रकृति को सम्मान व संरक्षण देने का संदेश भी यह पर्व देता है। आज जबकि पूरी दुनिया में पर्यावरण को लेकर चिंता जतायी जा रही है, तब छठ का महत्व और जाहिर होता है। इस पर्व के दौरान साफ-सफाई के प्रति जो संवेदनशीलता दिखायी जाती है, वह लगतार बनी रहे तो पर्यावरण का भी भला होगा। छठ पूजा की प्रक्रिया के बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि इससे सेहत को फायदा होता है।

छठ गीतों की अमिट छाप

हम बच्चे थे। छठी मइया या सूर्य भगवान के बारे में कोई ज्ञान नहीं था। उस उम्र में इसकी जानकारी हो, यह जरूरी भी नहीं था। पर घर या आसपास से जब छठ के गीत सुनायी देते थे, तो बहुत अच्छा लगता था। गीतों को गाते हुए घर की महिलाओं के छठ घाटों पर जाने और अर्घ देने की प्रक्रिया को हम बड़े मनोयोग से देखा करते थे। तब हमें यही बताया गया था कि भगवान सूर्य से ही तमाम जीव-जंतुओं का जीवन चल रहा है। इसलिए सूर्य की हम पूजा करते है। बचपन के वे दिन थे। माहौल हम बच्चों के इतना फेवर में हुआ करता था कि कुछ गलती भी हो जाये, तो घर के बड़े-बुजुर्ग उसे नजरअंदाज कर देते थे. यह हमारे अति उत्साह का बड़ा कारण हो जाता था। इस अति उत्साह में हम खूब उछल-कूद करते। शाम से लेकर देर रात तक दादी-मां को हम कुछ दूरी से देखा करते थे।

हम मन ही मन सोचते कि दूसरे दिन छठ घाट जाना है। इस उत्साह में हमें पता ही नहीं चलता था कि हम कब सोए और कब जग गये। छठ गीत सुनने के साथ ही नींद कहीं दूर चली जाती थी। हम घाट पर जाने के लिए झटपट तैयार हो जाते। भोर होने से पहले ही हम घाटों पर पहुंच जाते थे।

छठ घाटों पर गीत गाते हुए महिलाओं को हम देखते थे। घाट के किनारे दीयों की लौ से फूटता अद्भुत नजारा हम भूल नहीं पाते। हम सब सूर्य के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते थे। घाटों पर हम सुना करते थे- उग ना सूरज देव...यानी हम भगवान भास्कर से प्रार्थना करते थे कि आप हमारे बीच आयें ताकि यह सृष्टि चल

सके। दिवाली समाप्त होने के साथ ही घर में छठ पूजा की तैयारी शुरू हो जाया करती थी। उसी समय से छठ के गीत भी घरों में गाये जाने लगते थे। हम बच्चों के लिए दिवाली से पहले ही कपड़े वगैरह की खरीदारी हो जाती थी। हम इससे भी खुश होते थे कि नया ड्रेस पहनने को मिलेगा।

लोककथाओं में सूर्य पूजा

पुराण के मुताबिक राजा प्रियवद को कोई संतान नहीं थी। संतान प्राप्ति के लिए महर्षि कश्यप ने एक यज्ञ कराया। उसे पुत्रेष्टि यज्ञ कहा गया। यज्ञ के उपरांत राजा की पत्नी को खीर दी गयी। इसके असर से रानी मालिनी को पुत्र प्राप्त हुआ। लेकिन वह मृत था। दुखी राजा प्रियवद अपने मृत बच्चे को लेकर श्मशान चले गये। पुत्र के वियोग में उन्होंने प्राण त्याग करने की ठान ली। उसी समय भगवान

की मानस कन्या देवसेना अवतरित हुईं।

सृष्टि की मूल प्रवृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के चलते उन्हें पष्ठी कह कर पुकारा जाता है। देवसेना ने प्रियवद से कहा - राजन, तुम मेरा पूजन करो। दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करो। यह सुन राजा ने पष्ठी का व्रत किया। इससे उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। राजा ने यह पूजा कार्तिक माघ के शुक्ल षष्ठी को की थी।

दूसरी ओर, ऐसी भी मान्यता है कि छठ पूजा महाभारत काल में शुरू हुई थी। ऐसी मान्यता है कि दानवीर कर्ण ने सूर्य की उपासना शुरू की थी। वह भगवान सूर्य ने भक्त थे। हर दिन वह पानी में कमर तक खड़े होकर सूर्य की पूजा करते। उसी उपासना के फलस्वरूप कर्ण बड़े योद्धा बने। ऐसी भी मान्यता है कि पांडवों की पत्नी द्रौपदी भी सूर्य की पूजा करती थीं। वह बेहतर स्वास्थ्य और निरोग रहने के इरादे से सूर्य की पूजा किया करती थी।

भगवान श्रीराम ने की थी पूजा

इस महापर्व को लेकर मान्यता है कि छठ पूजा रामायण काल से होती आ रही है। जब भगवान राम अपना वनवास पूरा कर अयोध्या लौटे थे तब इसकी शुरुआत हुई थी। सूर्य वंशी श्रीराम और सीता जी ने अपना राज्याभिषेक होने के बाद भगवान सूर्य के सम्मान में कार्तिक शुक्ल की षष्ठी को उपवास रखा और पूजा अर्चना की। इसके बाद से यह पूजा एक महापर्व के रूप में मनाई जाने लगी।

कर्ण ऐसे करते सूर्य को खुश

महाभारत काल में कुंती के पुत्री कर्ण सूर्य देव के परम भक्त और उनके पुत्र भी थे। भगवान सूर्य को खुश करने के लिए कर्ण रोजाना सुबह के समय घंटों तक पानी में खड़े रह कर उनकी पूजा करते थे। कर्ण के इस तरह से ध्यान करने से सूर्य देव की उन पर विशेष कृपा होती है। इसलिए छठ पूजा में सूर्य देव को अर्घ्यदान देने की परंपरा जुड़ी है।

द्रौपदी को मिला था खोया साम्राज्य

महाभारत काल में इससे जुड़ा एक और कारण भी बताया जाता है। कहा जाता है कि महाभारत काल में जब पांडव अपना सर्वस्व हार चुके थे। उनके पास कुछ नहीं रह गया था उस समय द्रौपदी यानी कि पांचाली ने इस व्रत का अनुष्ठान कर पूजा की। इससे द्रौपदी और

पांडवों को उनका पूरा साम्राज्य वापस मलि गया था।

चार दिन का महापर्व

कार्तिक शुक्ल की चतुर्थी को 'नहा-खा' होता है। इस दनि स्नान व भोजन ग्रहण करने के बाद शुरू होता है। दूसरे दिन पंचमी को दिनभर निर्जला उपवास और शाम को सूर्यास्त के बाद ही भोजन ग्रहण कयिा जाता है। तीसरे दिन षष्ठी पर डूबते सूर्य को अर्घ्य देने के अलावा और छठ का प्रसाद बनता है। चौथे दिन सप्तमी की सुबह उगते सूर्य को अर्घ्य देने के साथ उपवास खोला जाता है।

लोक, जिसका एक व्यापक अर्थ है। सूर्य के प्रति आपार आस्था छठ के केंद्र में है। किसानी करते हुए गांव को देखते-समझते हुए माटी के करीब इस लोक पर्व को अब करीब से जानने लगा हूं। ग्रामीण भारत का लोकमन माटी की तरह उर्वर और निर्मल होता है। छठ के घाटों से गुजरते हुए मन के भीतर कबीर बजने लगते हैं- कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर...। यह पर्व पवित्रता से मनाया जाता है। साफ सफाई पर विशेष जोड़। सोचता हूं कि यदि हम हर रोज इतनी सफाई से रहें तो स्वच्छ भारत अभियान की जरुरत ही नहीं पड़ेगी। बिना किसी सरकारी सहायता से गाम-घरों में लोगबाग सड़क से लेकर घाटों तक की सफाई कर देते हैं। घर-आंगन की तो पूछिए मत। सबकुछ चकमक, सूरज की रोशनी की तरह।

मन के भीतर लालसाओं की तरह खेत पथार भी असंख्य फल-फूलों को उपजाती है, जिसे हम इस लोक पर्व में सूर्य को अर्पित करते हैं। लालसाओं के पीछे भागते मन को यह पर्व रोकने के लिए कहता है और संग ही यह भी संदेश देता है कि हम प्रकृति के समीप जाएं। कबीर की एक वाणी याद आ रही है- मन दाता, मन लालची., मन राजा, मन रंक। लोक जीवन के इस पर्व को एक किसान के तौर पर जब हम देखते हैं तो लगता है कि किसानी कर रहे लोग कितनी सहजता और प्रेम से सबकुछ भूलकर छठ पूजा में लग जाते हैं। खेत-खलिहान सबकुछ भूलकर। आलू-मक्का के नवातुर पौधों को प्रकृति के भरोसे छोड़कर छठ घाटों पर किसानों की चहलकदमी बढ़ जाती है। लोक जीवन के इस बृहद उत्सव के लिए जो सामान बटोरे जाते हैं वे सभी कृषि आधारित होते हैं। केला, नीबू, सिंघाड़ा, गन्ना, हल्दी, नारियल, अदरक...ये सभी प्रकृति के गोद से छठ पूजा के लिए तैयार घाट तक पहुंचते हैं। छठ पूजा के गीतों को यदि आप ध्यान सुनेंगे तो आप यह सब जान जाएंगे। मसलन इस गीत के शब्दों को पढिए- कवन देई के अइले जुड़वा पाहुन, केरा –नारियर अरघ लिहले। छठ गीतों का सांसकृतिक पक्ष भी अद्भूत है।

गीतों से जब हम आगे बढ़ते हैं तब गांव के उन टोलों पर नजर टिकती है जहां वे लोग आए हैं जो अपना घर-दुआर छोड़कर बाहर कमाने गए थे। छठ पूजा उनके लिए एक मौका है अपनी माटी से जुड़ने का। हम इस लोक पर्व को इस नजरिए से भी देख सकते हैं। छठ ही वो मौका है जब लाखों लोग अपने गांव घर की तरफ आते हैं। इन लोगों के कदम भर रखने से गांव-गांव खिल उठता है। इस

खुशी के लिए ही वो इतनी तकलीफदेह यात्राएं करते हैं, इसका अंदाजा हर कोई नहीं लगा सकता। खाली आंगन चहक उठता है। कभी कभी तो लगता है कि छठ एक ऐसा मौका जिसमें गांव की रोनक लौट आती है। इसके लिए आपको गांवों को देखना होगा।

शहरों में चार दिनों के इस पर्व में आखिरी दो दिन ही ज्यादा चहल पहल वाले होते हैं। आज के शहरीकरण के कारण लोग अपने मूल शहर या गांव से अन्य शहरों में भी प्रवास करने लग गए हैं। छठ पूजा पर अनेक प्रवासी अपने अपने गांव घरों को जाने की कोशिश तो करते हैं, लेकिन प्रत्येक परिवार के लिए यह संभव नहीं हो पाता है। इसके अलावा हर बड़े महानगर में बहती नदी का भी अभाव है। जैसे दिल्ली में यमुना किनारे छठ पूजा के समय विशाल जनसमूह एकत्रित होता है। वैसे तो नदी में ही छठ मनाने की परंपरा है, लेकिन लोगों की भीड़ को देखते हुए आजकल शहरों में छोटी छोटी बावड़ी और तालाबों में लोग उतर जाते हैं। इससे पूजा की रस्म अदायगी मात्र होती है बाकी उन इलाकों में कूड़ा-करकट और जल प्रदूषण बढ़ जाता है। समुद्र और नदी की पवित्रता को बचाए रखने के लिए छठ पूजा के लिए विशेष घाट आदि का बंदोबस्त किया जाता है, लेकिन इन सबके बावजूद छठ का त्यौहार उन सबके लिए एक जरूरी पर्व है, जिन्हें अपनी परंपराओं से प्यार है।

यह सब लिखते हुए कई यादें भी मन के भीतर कुलांचे मारने लगी है। याद आता है बचपन में घाट पर पांव का मिट्टी में धसना, गंगा मे छपछप, सूरज उगने का इंतजार, अधिकाधिक सुप मे अर्घ देने की होड़, ईख चुसना, ठेकुआ खाना, पारन का प्रसाद खाना, ना जाने कितनी सौंधी महक वाली यादें है। छठ एक लोक पर्व है, जो अपने घरों में हैं वो घाटों पर पूजा की तैयारी में जुटे होंगे और जो अपने घर-द्वार से दूर होंगे वे यादों के सहारे सबकुछ याद कर रहे होंगे। यही है लोक पर्व की खूबसूरती।

अक्षय जीवन के लिये अक्षय नवमी

डॉ० लालमणि तिवारी

कार्तिक माह की शुक्ल पक्ष की नवमी बहुत खास होती है। दक्षिण एवं पूर्व भारत में जहां इस दिन जगद्धात्री पूजा की जाती है। वहीं इस दिन उत्तर एवं मध्य भारत में अक्षय नवमी मनाई जाती है। इसे आंवला नवमी भी कहते हैं। मान्यता है कि इस दिन अच्छे कार्य करने से अगले कई जन्मों तक हमें इसका पुण्य फल मिलता रहेगा। वस्तुतः यह अक्षय जीवन के लिये भगवान विष्णु और शिव के साथ महालक्ष्मी की सम्मेलित उपासना का दिन है। यही त्रेता युग के प्रारम्भ की भी तिथि है।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी से लेकर पूर्णिमा तक भगवान विष्णु और माता लक्ष्मी आवंले के पेड़ पर निवास करते हैं। पद्म पुराण के अनुसार के अनुसार इस दिन द्वापर युग की शुरुआत हुई थी। आंवला नवमी पर आंवला के वृक्ष के पूजन का बहुत अधिक महत्व है। इस नवमी में दान-पुण्य करन से दूसरों नवमी से कई गुना ज्यादा फल मिलता है। इस दिन विधि-विधान से पूजा करने से संतान की भी प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि आज ही विष्णु भगवान ने कुष्माण्डक दैत्य को मारा था और उसके रोम से कुष्माण्ड की बेल हुई। इसी कारण कुष्माण्ड का दान करने से उत्तम फल मिलता है। इसमें गन्ध, पुष्प और अक्षतों से कुष्माण्ड का पूजन करना चाहिये। साथ ही आज के दिन विधि विधान से तुलसी का विवाह कराने से भी कन्यादान तुल्य फल मिलता है। चरक संहिता में बताया गया है अक्षय नवमी को महर्षि च्यवन ने आंवला खाया था जिस से उन्हें पुनः नवयौवन प्राप्त हुआ था। इस दिन कुष्मांड (काशीफल/ कददू) में गुप्तदान (सोना ,चांदी, रुपया) रखकर अगरबत्ती, फूल, रोली, चावल से पूजा कर गाय का घी, अन्न,फल, दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को देने से विशेष फल मिलता है इसीलिए इसे कुष्मांड नवमी भी कहते है। इस दिन भगवान विष्णु और लक्ष्मी की पूजन का भी विधान है। साथ ही इस दिन पूजन, तर्पण, स्नान और दान का बहुत अधिक महत्व है। माना जाता है कि अक्षय नवमी को श्रीकृष्ण ने मथुरा-वृंदावन की परिक्रमा कर कंस के अत्याचारों के विरुद्ध जनता को जगाया था और अगले दिन कंस का वध कर साबित कर दिया कि सत्य अक्षय होता है। त्रेता युग का प्रारंभ इसी दिन से हुआ था। इस दिन आंवले के वृक्ष की पूजा करने का भी विधान है। अक्षय का अर्थ है, जिसका क्षरण न हो। मान्यता है कि इस दिन किए गए सदकार्यों का अक्षय फल प्राप्त होता है।

> **आंवला वृक्ष की पूजा और इस वृक्ष के नीचे भोजन करने की प्रथा की शुरुआत करने वाली माता लक्ष्मी मानी जाती हैं। इस संदर्भ में कथा है कि एक बार माता लक्ष्मी पृथ्वी भ्रमण करने आयीं। रास्ते में भगवान विष्णु एवं शिव की पूजा एक साथ करने की इच्छा हुई। लक्ष्मी मां ने विचार किया कि एक साथ विष्णु एवं शिव की पूजा कैसे हो सकती है। तभी उन्हें ख्याल आया कि तुलसी एवं बेल का गुण एक साथ आंवले में पाया जाता है।**

आंवला वृक्ष की पूजा और इस वृक्ष के नीचे भोजन करने की प्रथा की शुरुआत करने वाली माता लक्ष्मी मानी जाती हैं। इस संदर्भ में कथा है कि एक बार माता लक्ष्मी पृथ्वी भ्रमण करने आयीं। रास्ते में भगवान विष्णु एवं शिव की पूजा एक साथ करने की इच्छा हुई। लक्ष्मी मां ने विचार किया कि एक साथ विष्णु एवं शिव की पूजा कैसे हो सकती है। तभी उन्हें ख्याल आया कि तुलसी एवं बेल का गुण एक साथ आंवले में पाया जाता है। तुलसी भगवान विष्णु को प्रिय है और बेल शिव को। आंवले के वृक्ष को विष्णु और शिव का प्रतीक चिह्न मानकर मां लक्ष्मी ने आंवले के वृक्ष की पूजा की। पूजा से प्रसन्न होकर विष्णु और शिव प्रकट हुए। लक्ष्मी माता ने आंवले के वृक्ष के नीचे भोजन बनाकर विष्णु और भगवान शिव को भोजन करवाया। इसके बाद स्वयं भोजन किया। जिस

दिन यह घटना हुई थी उस दिन कार्तिक शुक्ल नवमी तिथि थी। इसी समय से यह परंपरा चली आ रही है। इस दिन अगर आंवले की पूजा करना और आंवले के वृक्ष के नीचे बैठकर भोजन बनाना और खाना संभव न हो तो इस दिन आंवला जरूर खाना चाहिए।

आंवले का वृक्ष घर में लगाना वास्तु की दृष्टि से भी शुभ माना जाता है। वास्तु शास्त्र के अनुसार पूर्व की दिशा में बड़े वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए लेकिन आंवले को इस दिशा में लगाने से सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह होता है। इस वृक्ष को घर की उत्तर दिशा में भी लगाया जा सकता है।

इस दिन स्नान, पूजन, तर्पण तथा अन्न दान करने से हर मनोकामना पूरी होती है। अक्षय नवमी के दिन आंवले के वृक्ष की पूजा करने का नियम है। आंवले का वृक्ष भगवान विष्णु को अतिप्रिय है, क्योंकि इसमें लक्ष्मी का वास होता है। इसलिए इसकी पूजा करना माना विष्णु लक्ष्मी की पूजा करना। इस दिन व्रत करने से शादीशुदा स्त्रियों की सभी मनोकामना पूरी होती है। आंवला के पेड़ के नीचे साफ सफाई करके पूजा करें।

अक्षय नवमी का शास्त्रों में वही महत्व बताया गया है जो वैशाख मास की तृतीया का है। शास्त्रों के अनुसार अक्षय नवमी के दिन किया गया पुण्य कभी समाप्त नहीं होता है। इस दिन जो भी शुभ कार्य जैसे दान, पूजा, भक्ति, सेवा किया जाता है उनका पुण्य कई-कई जन्म तक प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस दिन कोई भी शास्त्र विरूद्ध काम किया जाए तो उसका दंड भी कई जन्मों तक भुगतना पड़ता है इसलिए अक्षय नवमी के दिन ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे किसी को कष्ट पहुंचे।

इस दिन आंवले के वृक्ष के नीचे भोजन बनाकर ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए इसके बाद स्वयं भोजन करना चाहिए। भोजन के समय पूर्व दिशा की ओर मुंह रखें। शास्त्रों में बताया गया है कि भोजन के समय थाली में आंवले का पत्ता गिरे तो यह बहुत ही शुभ होता है। थाली में आंवले का पत्ता गिरने से यह माना जाता है कि आने वाले साल में व्यक्ति की सेहत अच्छी रहेगी।

पौराणिक कथाएं

अक्षय नवमी के दिन मथुरा-वृंदावन की परिक्रमा करने को भी विशेष महत्व दिया जाता है। इसके पीछे मान्यता है कि इस दिन श्रीकृष्ण ने मथुरा-वृंदावन में अपने ग्वाल-सखाओं के साथ घूम-घूम कर कंस के आतंक के विरुद्ध जन-जागरण किया था और वहां के निवासियों से मिलकर उनका पक्ष जाना था। इसका ही परिणाम था कि अगले दिन दशमी को श्रीकृष्ण ने अत्याचारी शासक कंस का अंत कर दिया था। इस तरह यह जन-जागरण का भी पर्व है। यह

पर्व यह संदेश देता है कि जीत हमेशा सत्य की ही होती है। असत्य, आतंक और छल भले ही कितने भी शक्तिशाली हों, उनकी उम्र ज्यादा नहीं होती। सत्य अक्षय है। अतः सर्वदा सत्य के मार्ग का ही वरण करना चाहिए। आज भी आम लोग इस दिन मथुरा-वृंदावन की परिक्रमा को पूरा करते हैं। यह परिक्रमा मथुरा के विश्राम घाट पर यमुना जल के आचमन को लेकर शुरू होती है और यहीं पर आकर समाप्त होती है। परिक्रमा मार्ग में अनेक मंदिर हैं, जिनके लोग दर्शन लाभ प्राप्त करते हैं।

पौराणिक ग्रंथों में अक्षय नवमी के संबंध में एक रोचक कथा भी है। दक्षिण में स्थित विष्णुकांची राज्य के राजा जयसेन के इकलौते पुत्र का नाम मुकुंद देव था। एक बार राजकुमार मुकुंद देव जंगल में शिकार खेलने गए। तभी उनकी नजर एक सुंदरी पर पड़ी। वे उस पर मोहित हो गए। युवती का नाम किशोरी था और वह इसी राज्य के व्यापारी कनकाधिप की पुत्री थी। मुकुंद देव ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर युवती रोने लगी। उसने कहा कि मेरे भाग्य में पति का सुख लिखा ही नहीं है। राज ज्योतिषी ने कहा है कि मेरे विवाह मंडप में बिजली गिरने से मेरे वर की तत्काल मृत्यु हो जाएगी।

मुकुंद देव को अपने प्रस्ताव पर अडिग देख किशोरी भगवान शंकर की आराधना में लीन हो गई और मुकुंद देव अपने आराध्य सूर्य की आराधना में। कई माह बाद भगवान शंकर ने युवती से सूर्य की आराधना करने को कहा। दोनों सूर्य की आराधना कर रहे थे, इसी बीच विलोपी नामक दैत्य की नजर किशोरी पर पड़ी। वह उस पर झपटा। सूर्य देव ने अपने तेज से उसे तत्क्षण भस्म कर दिया और युवती से कहा कि तुम कार्तिक शुक्ल नवमी को आंवले के वृक्ष के नीचे विवाह मंडप बनाकर मुकुंद देव से विवाह कर लो। किशोरी और मुकुंद देव ने मिलकर मंडप बनाया। अकस्मात घनघोर घटाएं घिर आई और बिजली चमकने लगी। भांवरें पड़ गई, तो आकाश से बिजली विवाह मंडप की ओर गिरने लगी, लेकिन आंवले के वृक्ष ने उसे रोक लिया।

काशी नगर में एक निःसंतान धर्मात्मा और दानी वैश्य रहता था। एक दिन वैश्य की पत्नी से एक पड़ोसन बोली यदि तुम किसी पराये बच्चे की बलि भैरव के नाम से चढ़ा दो तो तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा। यह बात जब वैश्य को पता चली तो उसने मना कर दिया। लेकिन उसकी पत्नी मौके की तलाश में लगी रही। एक दिन एक कन्या को उसने कुएं में गिराकर भैरो देवता के नाम पर बलि दे दी। इस हत्या का परिणाम विपरीत हुआ। लाभ की जगह उसके पूरे बदन में कोढ़ हो गया और लड़की की प्रेतात्मा उसे सताने लगी। वैश्य के पूछने पर उसकी पत्नी ने सारी बात बता दी। इस पर वैश्य कहने लगा गौवध, ब्राह्मण वध तथा बाल वध करने वाले के लिए इस संसार में कहीं जगह नहीं है, इसलिए तू गंगातट पर जाकर भगवान का भजन कर गंगा स्नान कर तभी तू इस कष्ट से छुटकारा पा सकती है।

वैश्य की पत्नी गंगा किनारे रहने लगी। कुछ दिन बाद गंगा माता वृद्ध महिला का वेष धारण कर उसके पास आयीं और बोली तू मथुरा जाकर कार्तिक नवमी का व्रत तथा आंवला वृक्ष की परिक्रमा कर तथा उसका पूजन कर। यह व्रत करने से तेरा यह कोढ़ दूर हो जाएगा। वृद्ध महिला की बात मानकर वैश्य की पत्नी अपने पति से आज्ञा लेकर मथुरा जाकर विधिपूर्वक आंवला का व्रत करने लगी। ऐसा करने से वह भगवान की कृपा से दिव्य शरीर वाली हो गई तथा उसे पुत्र की प्राप्ति भी हुई।

शास्त्रों के अनुसार आंवला, पीपल, वटवृक्ष, शमी, आम और कदम्ब के वृक्षों को चारों पुरुषार्थ दिलाने वाला कहा गया है। इनके समीप जप-तप पूजा-पाठ करने से इंसान के सभी पाप मिट जाते हैं। पद्म पुराण में भगवान शिव ने कार्तिकेय से कहा है 'आंवला वृक्ष साक्षात् विष्णु का ही स्वरूप है। यह विष्णु प्रिय है और इसके स्मरण मात्र से गोदान के बराबर फल मिलता है।'

आंवले के औषधीय गुण

आंवले का वृक्ष औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। पौराणिक ग्रंथों से लेकर नए शोधों तक में इसके अनेक गुण बताए गए हैं। इसलिए इसकी पूजा का तात्पर्य इस अत्यंत लाभकारी वनस्पति को बचाये रखने का संकल्प लेना भी है, ताकि हम स्वस्थ रह सकें। आंवले का फल हो या इसका जूस, सेहत के लिए कितना फायदेमंद है, इसका जिक्र आयुर्वेद से लेकर एलोपैथ तक विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में आपको मिलेगा ही।

एक आंवले में दो संतरे जितनी मात्रा में विटामिन सी मौजूद है। इसके अलावा, आंवले पोलीफेनॉल्स, आयरन, जिंक, कैरोटीन, फाइबर, विटामिन बी कांप्लेक्स, कैल्शियम, एंटीऑक्सीडेंट्स आदि अच्छी मात्रा में मौजूद हैं।

❖ आंवला 50 ग्राम और अंगूर (द्राक्षा) 50 ग्राम को लेकर पीसकर चटनी बना लें। इस चटनी को कई बार चाटने से बुखार की प्यास और बेचैनी समाप्त होती है।

❖ आंवले का काढ़ा बनाकर सुबह और शाम को पीने से वृद्धावस्था में जीर्ण-ज्वर और खांसी में राहत मिलती है।

❖ आंवला 6 ग्राम, चित्रक 6 ग्राम, छोटी हरड़ 6 ग्राम और पीपल 6 ग्राम आदि को लेकर पीसकर रख लें। 300 मिलीलीटर पानी में डालकर उबाल लें, एक-चौथाई पानी रह जाने पर पीने से बुखार उतर जाता है।

❖ दिल में दर्द शुरू होने पर आंवले के मुरब्बे में तीन-चार बूंद अमृतधारा सेवन करें।

❖ भोजन करने के बाद हरे आंवले का रस 25-30 मिलीलीटर रस ताजे पानी में मिलाकर सेवन करें।

❖ एक चम्मच सूखे आंवले का चूर्ण फांककर ऊपर से लगभग 250 मिलीलीटर दूध पी लें।

❖ आंवले में विटामिन-सी अधिक है। इसके मुरब्बे में अण्डे से भी अधिक शक्ति है। यह अत्यधिक शक्ति एवं सौन्दर्यवर्द्धक है। आंवले के नियमित सेवन से हृदय की धड़कन, नींद का न आना तथा रक्तचाप आदि रोग ठीक हो जाते हैं। रोज एक मुरब्बा गाय के दूध के साथ लेने से हृदय रोग दूर रहता है। हरे आंवलों का रस शहद के साथ, आंवलों की चटनी, सूखे आंवला की फंकी या मिश्री के साथ लेने से सभी हृदय रोग ठीक होते हैं।

❖ सूखा आंवला और मिश्री समान भाग पीस लें। इसकी एक चाय की चम्मच की फंकी रोजाना पानी से लेने से हृदय के सारे रोग दूर हो जाते हैं।

❖ आंवले का मुरब्बा दूध से लेने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है व किसी भी प्रकार के हृदय-विकार नहीं होते हैं।

❖ 20 ग्राम सूखे आंवले और 20 ग्राम गुड़ को 500 मिलीलीटर पानी में उबालें, जब यह 250 मिलीलीटर शेष तो इसे छानकर सुबह-शाम पिलाने से गठिया में लाभ होता है परन्तु इलाज के दौरान नमक छोड़ देना चाहिए।

❖ सूखे आंवले को कूट-पीस लें और उसके चूर्ण से 2 गुनी मात्रा में गुड़ मिलाकर बेर के आकार की गोलियां बना लें। 3 गोलियां रोजाना लेने से जोड़ों का खत्म होता है।

❖ आंवला और हरड़ 3-3 ग्राम की मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण गर्म जल के साथ रोजाना सुबह-शाम सेवन करने से जोड़ों (गठिया) का दर्द खत्म हो जाता है।

❖ एक गिलास पानी में 25 ग्राम सूखे आंवले और 50 ग्राम गुड़ डालकर उबालें। चौथाई पानी रहने पर इसे छानकर 2 बार रोज पिलाएं। इस अवधि में बिना नमक की रोटी तथा मूंग की दाल में सेंधानमक, कालीमिर्च डालकर खाएं। इस प्रयोग के समय ठंडी हवा से बचें।

❖ आंवले का मुरब्बा खाने से उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) में लाभ होता है। एक-एक आंवला सुबह और शाम खाएं।

❖ आंवले का चूर्ण एक चम्मच, गिलोय का चूर्ण आधा चम्मच तथा दो चुटकी सोंठ। तीनों को मिलाकर गर्म पानी से सेवन करें।

पूजा विधि

आंवला नवमी के दिन सुबह स्नान कर दाहिने हाथ में जल, चावल, फूल आदि लेकर निम्न प्रकार से व्रत का संकल्प करें-

अद्येत्यादि अमुकगोत्रोमुक (अपना गोत्र बोलें) ममाखिल पापक्षयपूर्वकधर्मार्थकाममोक्षसिद्धिद्वारा श्रीविष्णुप्रीत्यर्थं धात्रीमूले विष्णुपूजनं धात्रीपूजनं च करिष्ये।

ऐसा संकल्प कर आंवले के वृक्ष के नीचे पूर्व दिशा की ओर मुख करके ऊं ध्रत्यै नमः मंत्र से आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करके निम्नलिखित मंत्रों से आंवले के वृक्ष की जड़ में दूध की धारा गिराते हुए पितरों का तर्पण

पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेक्षयं पयः।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
ते पिवन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेक्षयं पयः।।
दामोदरनिवासायै धात्यै देव्यै नमो नमः।
सूत्रेणानेन बध्नामि धात्रि देवि नमोस्तु ते।।

इसके बाद कपूर या शुद्ध घी के दिए से आंवले के वृक्ष की आरती करें तथा निम्न मंत्र से उसकी प्रदक्षिणा करें -

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु ;

इसके बाद आंवले के वृक्ष के नीचे ही ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिए और अंत में स्वयं भी आंवले के वृक्ष के नीचे बैठकर भोजन करना चाहिए। एक पका हुआ कुम्हड़ा (कद्दू) लेकर उसके अंदर रत्न, सोना, चांदी या रुपए आदि रखकर निम्न संकल्प करें-

ममाखिलपापक्षयपूर्वक सुख सौभाग्यादीनामुक्तरोत्तरा भिवृद्धये कूष्माण्डदानमहं करिष्ये।

इसके बाद योग्य ब्राह्मण को तिलक करके दक्षिणा सहित कुम्हड़ा दे दें और यह प्रार्थना करें-

कूष्माण्डं बहुबीजाढयं ब्रह्मा निर्मितं पुरा।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितृणां तारणाय च।।

पितरों के शीत निवारण के लिए यथाशक्ति कंबल आदि ऊनी कपड़े भी योग्य ब्राह्मण को देना चाहिए।

घर में आंवले का वृक्ष न हो तो किसी बगीचे आदि में आंवले के वृक्ष के समीप जाकर पूजा, दानादि करने की भी परंपरा है अथवा गमले में आंवले का पौधा रोपित कर घर में यह कार्य संपन्न कर लेना चाहिए।

●●●

तुलसी विवाह

सरिता यादव

तुलसी विवाह कार्तिक माह की देवोत्थान एकादशी के दिन मनाया जाने वाला विशुद्ध मांगलिक और आध्यात्मिक प्रसंग है। सनातन मान्यता के अनुसार इस तिथि पर भगवान विष्णु के साथ तुलसी का विवाह होता है, क्योंकि इस दिन भगवान विष्णु चार महीने तक सोने के बाद जागते हैं। भगवान विष्णु को तुलसी बेहद प्रिय हैं। तुलसी का एक नाम वृंदा भी है। देवता जब जागते हैं, तो सबसे पहली प्रार्थना हरिवल्लभा तुलसी की ही सुनते हैं। इसीलिए तुलसी विवाह को देव जागरण के पवित्र मुहूर्त के स्वागत का आयोजन माना जाता है। तुलसी विवाह का सीधा अर्थ है, तुलसी के माध्यम से भगवान का आवाहन। कार्तिक, शुक्ल पक्ष, एकादशी को तुलसी पूजन का उत्सव मनाया जाता है। वैसे तो तुलसी विवाह के लिए कार्तिक, शुक्ल पक्ष, नवमी की तिथि ठीक है, परन्तु कुछ लोग एकादशी से पूर्णिमा तक तुलसी पूजन कर पाँचवें दिन तुलसी विवाह करते हैं। आयोजन बिल्कुल वैसा ही होता है, जैसे हिन्दू रीति-रिवाज से सामान्य वर-वधु का विवाह किया जाता है।

धार्मिक मान्यता

मंडप, वर पूजा, कन्यादान, हवन और फिर प्रीतिभोज, सब कुछ पारम्परिक रीति-रिवाजों के साथ निभाया जाता है। इस विवाह में शालिग्राम वर और तुलसी कन्या की भूमिका में होती है। यह सारा आयोजन यजमान सपत्नीक मिलकर करते हैं। इस दिन तुलसी के पौधे को यानी लड़की को लाल चुनरी-ओढ़नी ओढ़ाई जाती है। तुलसी विवाह में सोलह श्रृंगार के सभी सामान चढ़ावे के लिए रखे जाते हैं। शालिग्राम को दोनों हाथों में लेकर यजमान लड़के के रूप में यानी भगवान

विष्णु के रूप में और यजमान की पत्नी तुलसी के पौधे को दोनों हाथों में लेकर अग्नि के फेरे लेते हैं। विवाह के पश्चात् प्रीतिभोज का आयोजन किया जाता है। कार्तिक मास में स्नान करने वाले स्त्रियाँ भी कार्तिक शुक्ल एकादशी को शालिग्राम और तुलसी का विवाह रचाती है। समस्त विधि विधान पूर्वक गाजे बाजे के साथ एक सुन्दर मण्डप के नीचे यह कार्य सम्पन्न होता है विवाह के स्त्रियाँ गीत तथा भजन गाती है ।

मगन भई तुलसी राम गुन गाइके मगन भई तुलसी।
सब कोऊ चली डोली पालकी रथ जुडवाये के।।
साधु चले पाँय पैया, चीटी सो बचाई के।
मगन भई तुलसी राम गुन गाइके।।

तुलसी विवाह कथा

प्राचीन काल में जालंधर नामक राक्षस ने चारों तरफ़ बड़ा उत्पात मचा रखा था। वह बड़ा वीर तथा पराक्रमी था। उसकी वीरता का रहस्य था, उसकी पत्नी वृंदा का पतिव्रता धर्म। उसी के प्रभाव से वह सर्वजंयी बना हुआ था। जालंधर के उपद्रवों से परेशान देवगण भगवान विष्णु के पास गये तथा रक्षा की गुहार लगाई। उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान विष्णु ने वृंदा का पतिव्रता धर्म भंग करने का निश्चय किया। उधर, उसका पति जालंधर, जो देवताओं से युद्ध कर रहा था, वृंदा का सतीत्व नष्ट होते ही मारा गया। जब वृंदा को इस बात का पता लगा तो क्रोधित होकर उसने भगवान विष्णु को शाप दे दिया, 'जिस प्रकार तुमने छल से मुझे पति वियोग दिया है, उसी प्रकार तुम भी अपनी स्त्री का छलपूर्वक हरण होने पर स्त्री वियोग सहने के लिए मृत्यु लोक में जन्म लोगे।' यह कहकर वृंदा अपने पति के साथ सती हो गई। जिस जगह वह सती हुई वहाँ तुलसी का पौधा उत्पन्न हुआ। एक अन्य प्रसंग के अनुसार वृंदा ने विष्णु जी को यह शाप दिया था कि तुमने मेरा सतीत्व भंग किया है। अतः तुम पत्थर के बनोगे। विष्णु बोले, 'हे वृंदा ! यह तुम्हारे सतीत्व का ही फल है कि तुम तुलसी बनकर मेरे साथ ही रहोगी। जो मनुष्य तुम्हारे साथ मेरा विवाह करेगा, वह परम धाम को प्राप्त होगा।' बिना तुलसी दल के शालिग्राम या विष्णु जी की पूजा अधूरी मानी जाती है। शालिग्राम और तुलसी का विवाह भगवान विष्णु और महालक्ष्मी के विवाह का प्रतीकात्मक विवाह है।

कार्तिक पूर्णिमा

दिवाकर शर्मा

सनातन संस्कृति में पूर्णिमा का व्रत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रत्येक वर्ष 12 पूर्णिमाएं होती हैं। जब अधिकमास या मलमास आता है तब इनकी संख्या बढकर 13 हो जाती है। कार्तिक पूर्णिमा को त्रिपुरी पूर्णिमा या गंगा स्नान के नाम से भी जाना जाता है। इस पुर्णिमा को त्रिपुरी पूर्णिमा की संज्ञा इसलिए दी गई है क्योंकि आज के दिन ही भगवान भोलेनाथ ने त्रिपुरासुर नामक महाभयानक असुर का अंत किया था और वे त्रिपुरारी के रूप में पूजित हुए थे।

> भगवान विष्णु ने प्रलय काल में वेदों की रक्षा के लिए तथा सृष्टि को बचाने के लिए मत्स्य अवतार धारण किया था। कार्तिक मास में आने वाली पूर्णिमा वर्षभर की पवित्र पूर्णमासियों में से एक है। इस दिन किये जाने वाले दान-पुण्य के कार्य विशेष फलदायी होते हैं।

ऐसी मान्यता है कि इस दिन कृतिका में शिव शंकर के दर्शन करने से सात जन्म तक व्यक्ति ज्ञानी और धनवान होता है। इस दिन चन्द्र जब आकाश में उदित हो रहा हो उस समय शिवा, संभूति, संतति, प्रीति, अनुसूया और क्षमा इन छः कृतिकाओं का पूजन करने से शिव जी की प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस दिन गंगा नदी में स्नान करने से भी पूरे वर्ष स्नान करने का फाल मिलता है। इसी दिन भगवान विष्णु ने प्रलय काल में वेदों की रक्षा के लिए तथा सृष्टि को बचाने के लिए मत्स्य अवतार धारण किया था। कार्तिक मास में आने वाली पूर्णिमा वर्षभर की पवित्र पूर्णमासियों में से एक है। इस दिन किये जाने वाले दान-पुण्य के कार्य विशेष फलदायी होते हैं। यदि इस दिन कृतिका नक्षत्र पर चंद्रमा और विशाखा नक्षत्र पर सूर्य हो तो पद्मक योग का निर्माण होता है, जो कि बेहद दुर्लभ है। वहीं अगर इस दिन कृतिका नक्षत्र पर चंद्रमा और बृहस्पति हो तो, यह महापूर्णिमा कहलाती है। इस दिन संध्याकाल में त्रिपुरोत्सव करके दीपदान करने से पुनर्जन्म का कष्ट नहीं होता है।

महाभारत

महाभारत काल में हुए १८ दिनों के विनाशकारी युद्ध में योद्धाओं और सगे संबंधियों को देखकर जब युधिष्ठिर कुछ विचलित हुए तो भगवान श्री कृष्ण पांडवों के साथ गढ़ खादर के विशाल रेतीले मैदान पर आए। कार्तिक शुक्ल अष्टमी को पांडवों ने स्नान किया और कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी तक गंगा किनारे यज्ञ किया। इसके बाद रात में दिवंगत आत्माओं की शांति के लिए दीपदान करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। इसलिए इस दिन गंगा स्नान का और विशेष रूप से गढ़मुक्तेश्वर तीर्थ नगरी में आकर स्नान करने का विशेष महत्व है।

शिव त्रिपुरान्तक

मान्यता यह भी है कि इस दिन पूरे दिन व्रत रखकर रात्रि में वृषदान यानी बछड़ा दान करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस

दिन उपवास करके भगवान भोलेनाथ का भजन और गुणगान करता है उसे अग्निष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस पूर्णिमा को शैव मत में जितनी मान्यता मिली है उतनी ही वैष्णव मत में भी।

वैष्णव मत

कार्तिक पूर्णिमा को गोलोक के रासमण्डल में श्री कृष्ण ने श्री राधा का पूजन किया था। हमारे तथा अन्य सभी ब्रह्मांडों से परे जो सर्वोच्च गोलोक है वहां इस दिन राधा उत्सव मनाया जाता है तथा रासमण्डल का आयोजन होता है। कार्तिक पूर्णिमा को श्री हरि के बैकुण्ठ धाम में देवी तुलसी का मंगलमय पराकाट्य हुआ था। कार्तिक पूर्णिमा को ही देवी तुलसी ने पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया था। कार्तिक पूर्णिमा को राधिका जी की शुभ प्रतिमा का दर्शन और वन्दन करके मनुष्य जन्म के बंधन से मुक्त हो जाता है। इस दिन बैकुण्ठ के स्वामी श्री हरि को तुलसी पत्र अर्पण करते हैं। कार्तिक मास में विशेषतः श्री राधा और श्री कृष्ण का पूजन करना चाहिए। जो कार्तिक में तुलसी वृक्ष के नीचे श्री राधा और श्री कृष्ण की मूर्ति का पूजन (निष्काम भाव से) करते हैं उन्हें जीवनमुक्त समझना चाहिए। तुलसी के अभाव में आंवलें के नीचे पूजन करनी चाहिए। कार्तिक मास में पराये अन्न, गाजर, दाल, चावल, मूली, बैंगन, घीया, तेल लगाना, तेल खाना, मदिरा, कांजी का त्याग करें। कार्तिक मास में अन्न का दान अवश्य करें। कार्तिक पूर्णिमा को बहुत अधिक मान्यता मिली है। इस पूर्णिमा को महाकार्तिकी भी कहा गया है। यदि इस पूर्णिमा के दिन भरणी नक्षत्र हो तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। अगर रोहिणी नक्षत्र हो तो इस पूर्णिमा का महत्व कई गुणा बढ़ जाता है। इस दिन कृतिका नक्षत्र पर चन्द्रमा और बृहस्पति हों तो यह महापूर्णिमा कहलाती है। कृतिका नक्षत्र पर चन्द्रमा और विशाखा पर सूर्य हो तो ₹पद्मक योग₹ बनता है जिसमें गंगा स्नान करने से पुष्कर से भी अधिक उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

कार्तिक पूर्णिमा की पौराणिक कथा

पुरातन काल में एक समय त्रिपुर राक्षस ने एक लाख वर्ष तक प्रयागराज में घोर तप किया। उसकी तपस्या के प्रभाव से समस्त जड़-चेतन, जीव और देवता भयभीत हो गये। देवताओं ने तप भंग करने के लिए अप्सराएँ भेजीं लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। त्रिपुर राक्षस के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी स्वयं उसके सामने प्रकट हुए और वरदान मांगने को कहा। त्रिपुर ने वरदान मांगा कि, 'मैं न देवताओं के हाथों मरूं, न मनुष्यों के हाथों से'। इस वरदान के बल पर त्रिपुर निडर होकर अत्याचार करने लगा। इतना ही नहीं उसने कैलाश पर्वत पर भी चढ़ाई कर दी। इसके बाद भगवान शंकर और त्रिपुर के बीच युद्ध हुआ। अंत में शिव जी ने ब्रह्मा जी और भगवान विष्णु की मदद से त्रिपुर का संहार किया।

महत्व

कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगा स्नान, दीप दान, हवन, यज्ञ आदि करने से सांसारिक पाप और ताप का शमन होता है। इस दिन किये जाने वाले अन्न, धन एव वस्त्र दान का भी बहुत महत्व बताया गया है। इस दिन जो भी दान किया जाता हैं उसका कई गुणा लाभ मिलता है। मान्यता यह भी है कि इस दिन व्यक्ति जो कुछ दान करता है वह उसके लिए स्वर्ग में संरक्षित रहता है जो मृत्यु लोक त्यागने के बाद स्वर्ग में उसे पुनःप्राप्त होता है। शास्त्रों में वर्णित है कि कार्तिक पुर्णिमा के दिन पवित्र नदी व सरोवर एवं धर्म स्थान में जैसे, गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, गंडक, कुरूक्षेत्र, अयोध्या, काशी में स्नान करने से विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। कार्तिक माह की पूर्णिमा तिथि पर व्यक्ति को बिना स्नान किए नहीं रहना चाहिए

स्नान और दान विधि

महर्षि अंगिरा ने स्नान के प्रसंग में लिखा है कि यदि स्नान में कुशा और दान करते समय हाथ में जल व जप करते समय संख्या का हीं किया जाए तो संकल्प न कर्म फल की प्राप्ति नहीं होती है। शास्त्र के नियमों का पालन करते हुए इस दिन स्नान करते समय पहले हाथ पैर धो लें फिर आचमन करके हाथ में कुशा लेकर स्नान करें, इसी प्रकार दान देते समय में हाथ में जल लेकर दान करें। आप यज्ञ और जप कर रहे हैं तो पहले संख्या का संकल्प कर लें फिर जप और यज्ञादि कर्म करें।

कार्तिक पूर्णिमा व्रत मुहूर्त

नवंबर 11, 2019 को 18:04:00 से पूर्णिमा आरम्भ
नवंबर 12, 2019 को 19:06:40 पर पूर्णिमा समाप्त

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में आने वाली पूर्णिमा को कार्तिक पूर्णिमा कहते हैं। इस दिन महादेव जी ने त्रिपुरासुर नामक राक्षस का संहार किया था, इसलिए इसे 'त्रिपुरी पूर्णिमा' भी कहते हैं। यदि इस दिन कृतिका नक्षत्र हो तो यह 'महाकार्तिकी' होती है। वहीं भरणी नक्षत्र होने पर इस पूर्णिमा का विशेष फल प्राप्त होता है। रोहिणी नक्षत्र की वजह से इसका महत्व और बढ़ जाता है।

मान्यता है कि कार्तिक पूर्णिमा पर संध्या के समय भगवान विष्णु का मत्स्यावतार हुआ था। इस दिन गंगा स्नान के बाद दीप-दान का फल दस यज्ञों के समान होता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अंगिरा और आदित्य ने इसे महापुनीत पर्व कहा है।

कार्तिक पूर्णिमा व्रत और धार्मिक कर्म

कार्तिक पूर्णिमा पर गंगा स्नान, दीपदान, होम, यज्ञ और ईश्वर की उपासना का विशेष महत्व है। इस दिन किये जाने वाले धार्मिक कर्मकांड इस प्रकार हैं-

- ❖ पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल जाग कर व्रत का संकल्प लें और किसी पवित्र नदी, सरोवर या कुंड में स्नान करें।
- ❖ इस दिन चंद्रोदय पर शिवा, संभूति, संतति, प्रीति, अनुसुईया और क्षमा इन छः कृतिकाओं का पूजन अवश्य करना चाहिए।
- ❖ कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में व्रत करके बैल का दान करने से शिव पद प्राप्त होता है।
- ❖ गाय, हाथी, घोड़ा, रथ और घी आदि का दान करने से संपत्ति बढ़ती है।
- ❖ इस भेड़ का दान करने से ग्रहयोग के कष्टों का नाश होता है।
- ❖ कार्तिक पूर्णिमा से प्रारंभ होकर प्रत्येक पूर्णिमा को रात्रि में व्रत और जागरण करने से सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।
- ❖ कार्तिक पूर्णिमा का व्रत रखने वाले व्रती को किसी जरुरतमंद को भोजन और हवन अवश्य कराना चाहिए।
- ❖ इस दिन यमुना जी पर कार्तिक स्नान का समापन करके राधा-कृष्ण का पूजन और दीपदान करना चाहिए।

●●●

सनातन का आधार पवमान मंत्र

डॉ दिनेश उपाध्याय

एक छोटी सी लौ अपने प्रकाश से सघन अंधियारे को तार-तारकर अपनी रंग-बिरंगी किरणें फैला देती है। चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है। इसी प्रकार अपने मन के अंधियारे को मिटाने के लिए अंतर्मन में आशा व विश्वासरूपी ज्योति का जलाये रखना आवश्यक है। हमारा मनोबल एवं आत्मबल ही उस तेल का काम करता है जो इस ज्योति को जलाये रखने में सक्षम होता है। यह ज्योति ही हमारी आत्मचेतना है जो हमें अंधियारे से मुक्ति दिलाकर हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। आत्मचेतना के जागते ही प्रेरणा, प्रभाव, उत्साह गुणवत्ता सभी विकसित होने लगते हैं, और हम सरलता से लक्ष्य प्राप्त कर लेते है।

पवमान मन्त्र या पवमान अभयारोह बृहदारण्यक उपनिषद में विद्यमान एक मन्त्र है। यह मन्त्र भारतीय सनातन संस्कृति का आधार मन्त्र जैसा ही है। इसके शब्द सनातन को अनंत प्रकाश से जोड़ते हैं। इसी प्रकाश की यात्रा मनुष्य को मनुष्य होने का प्रमाण प्रदान कराती है। यह मंत्र वस्तुतः सनातन संस्कृति का आधार है।

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।
॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः ॥
– बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.28।

उपनिषदों की आज्ञा है, अँधेरे से प्रकाश की ओर जाइये मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो।

मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।
॥ॐ शांति शांति शांति॥

बृहदारण्यक उपनिषद की ये प्रार्थना जिसमें प्रकाश उत्सव चित्रित है: 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् 'अंधेरे से ज्योति अर्थात प्रकाश की ओर जाइए' यह उपनिषदों की आज्ञा है। उपनिषद् अर्थात मानव जीवन दर्शन के मूल नैसर्गिक, संवैधानिक निर्देश। यही नियम है जिनसे स्वस्थ, सुखी , शांत ,और विकासोन्मुखी समाज और विश्व की अवधारणा पुष्ट हो सकती है। ज्योति पर्व फिर आया है और यही सन्देश लेकर आया है। याद दिलाने के लिए आया है। आज की दुनिया की समस्त अशांति , उद्विग्नता और अव्यवस्था एक मात्र उपाय यही है की हम उपनिषद की इस आज्ञा के अनुपालक बने। यह मात्रा एक उत्सव नहीं है बल्कि जीवन जीने का मांत्रिक आयोजन है जिससे सीख कर आगे चलना है। यह केवल सामान्य त्यौहार नहीं है बल्कि सृष्टि और प्रकृति में संस्कृति कौर सभ्यता के समन्वय का पर्व है। यह सच में प्रकृति और सृष्टि की स्वच्छता का पर्व है।

भारत में भरपूर बरसात के सूचक उत्तरा नक्षत्र की विदाई के साथ त्यौहारों यथा हरितालिका, ऋषि पंचमी, राधाष्टमी, डोल ग्यारस, अनन्त चतुर्दशी, नवरात्रि उत्सव, विजयादशमी, शरदपूर्णिमा और फिर दीपावली का सिलसिला प्रारम्भ होता है। लगता है, उत्सवों और त्यौहारों का यह सिलसिला - महज संयोग नहीं है। प्रतीत होता है मानों यह परम्परागत कृषक समाज द्वारा मनाया जाने वाला खरीफ उत्सव है। इसके अन्तर्गत दीपावली पर लक्ष्मी पूजन होता है। फिर गोवर्धन पूजा। उसके बाद, धन-धान्य और

“भारत में भरपूर बरसात के सूचक उत्तरा नक्षत्र की विदाई के साथ त्यौहारों यथा हरितालिका, ऋषि पंचमी, राधाष्टमी, डोल ग्यारस, अनन्त चतुर्दशी, नवरात्रि उत्सव, विजयादशमी, शरदपूर्णिमा और फिर दीपावली का सिलसिला प्रारम्भ होता है। लगता है, उत्सवों और त्यौहारों का यह सिलसिला - महज संयोग नहीं है।”

मिष्ठानों की महक बिखेरते अन्नकूट का आयोजन होता है। सभी उत्सव कल-कल करती नदियों और अनाज उगाती रत्नगर्भा धरती जैसे प्राकृतिक संसाधनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मनाए जाते हैं। ये आस्था और उत्सव के विविध रंग हैं जिन्हें भारतीय समाज ने महापुरुषों की कथाओं से जोड़कर तथा धार्मिक संस्कारों में ढालकर जीवनशैली का हिस्सा बनाया है। दीपावली को विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं, कहानियों या मिथकों को चिह्नित करने के लिए हिंदू, जैन और सिखों द्वारा मनायी जाती है लेकिन वे सब बुराई पर अच्छाई, अंधकार पर प्रकाश, अज्ञान पर ज्ञान और निराशा पर आशा की विजय के दर्शाते हैं। भारत में प्राचीन काल से दीवाली को हिंदू कैलेंडर के कार्तिक माह में गर्मी की फसल के बाद के एक त्यौहार के रूप में दर्शाया गया। दीवाली का पद्म पुराण और स्कन्द पुराण नामक संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख मिलता है जो माना जाता है कि पहली सहस्त्राब्दी के दूसरे भाग में किन्हीं केंद्रीय पाठ को विस्तृत कर लिखे गए थे। दीये (दीपक) को स्कन्द पुराण में सूर्य के हिस्सों का प्रतिनिधित्व करने वाला माना गया है, सूर्य जो जीवन के लिए प्रकाश और ऊर्जा का लौकिक दाता है और जो हिन्दू कैलंडर अनुसार कार्तिक माह में अपनी स्तिथि बदलता है। कुछ क्षेत्रों में हिन्दू दीवाली को यम और नचिकेता की कथा के साथ भी जोड़ते हैं। नचिकेता की कथा जो सही बनाम गलत, ज्ञान बनाम अज्ञान, सच्चा धन बनाम क्षणिक धन आदि के बारे में बताती है; पहली सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व उपनिषद में दर्ज़ की गयी है। इसे सिख, बौद्ध तथा जैन धर्म के लोग भी मनाते हैं। जैन धर्म के लोग इसे महावीर के मोक्ष दिवस के रूप में मनाते हैं तथा सिख समुदाय इसे बंदी छोड़ दिवस के रूप में मनाता है।

7 वीं शताब्दी के संस्कृत नाटक नागनंद में राजा हर्ष ने इसे दीपप्रतिपादुत्सवः कहा है जिसमें दिये जलाये जाते थे और नव दुल्हन और दूल्हे को तोहफे दिए जाते थे। 9 वीं शताब्दी में राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इसे दीपमालिका कहा है जिसमें घरों की पुताई की जाती थी और तेल के दीयों से रात में घरों, सड़कों और बाजारों सजाया जाता था। फारसी यात्री और इतिहासकार अल बेरुनी, ने भारत पर अपने 11 वीं सदी के संस्मरण में, दीवाली को कार्तिक महीने में नये चंद्रमा के दिन पर हिंदुओं द्वारा मनाया जाने वाला त्यौहार कहा है। हिंदू दर्शन में योग, वेदांत, और सामख्या विद्यालय सभी में यह विश्वास है कि इस भौतिक शरीर और मन से परे वहां कुछ है जो शुद्ध अनंत, और शाश्वत है जिसे आत्मन् या आत्मा कहा गया है। दीवाली, आध्यात्मिक अंधकार पर आंतरिक प्रकाश, अज्ञान पर ज्ञान, असत्य पर सत्य और बुराई पर अच्छाई का उत्सव है।

कुछ लोग दीपावली पर जलाए जाने वाले दियों की भूमिका को दूसरे नजरिए से देखते हैं। उनकी मान्यता है कि दीपावली का उत्सव, बरसाती कीट-पतंगों से मुक्ति दिलाने का आयोजन है इसलिये हर घर में तीन से चार दिन तक, अधिक-से-अधिक दीये जलाये जाते हैं। विचार, मान्यताएँ तथा लोक गाथाएँ अनेक हो सकती हैं पर यह निर्विवाद है कि हर साल दीपों का त्यौहार पूरी श्रद्धा तथा धूमधाम से मनाया जाता है। मानवीय प्रवृत्ति अदभुत है। उसने, हर दिन कुछ नया और बेहतर करने की दृष्टि से दीपावली उत्सव को भव्यता से जोड़ा। इस क्रम में सबसे पहले दीपों की संख्या बढ़ी होगी। कालान्तर में जब बारूद की खोज हुई तो मानवीय प्रज्ञा ने दीपोत्सव में आतिशबाजी को जोड़ा। रसायनशास्त्र ने आतिशबाजी में मनभावन रंग भरे और उसे आवाज दी। पटाखे बनना प्रारम्भ हुआ और उनमें विविधता आई। विविधता से आकर्षण उपजा। उसका उपयोग, समृद्धि दर्शाने का जरिया बना। मौजूदा बाजार उनसे पटा पड़ा है। दूसरे देश, पटाखों के निर्माण में आर्थिक समृद्धि और रोज़गार के अवसर देख रहे हैं। पटाखों की लोकप्रियता और सामाजिक स्वीकार्यता ने उन्हें विवाह समारोहों और ख़ुशियों के इज़हार का प्रभावशाली जरिया बना दिया है। पटाखे जलाते समय यह जरूर ध्यान रहे कि प्रकृति की शान्ति और वातावरण की शुद्धता में कोई क्षति न हो। दीपावली आज केवल भारत के ही नहीं बल्कि समूचे एशिया और उससे भी इतर और व्यापक योरप , अमेरिका , ऑस्ट्रेलिया , अफ्रीका आदि महाद्वीपो के सैकड़ो देशो में इसी उत्साह और श्रद्धा से मनाया जाने लगा है। दीपावली को विशेष रूप से हिंदू, जैन और सिख समुदाय के साथ विशेष रूप से दुनिया भर में मनाया जाता है। ये, श्रीलंका, पाकिस्तान, म्यांमार, थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फिजी, मॉरीशस, केन्या, तंजानिया, दक्षिण अफ्रीका, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद और टोबैगो, नीदरलैंड, कनाडा, ब्रिटेन शामिल संयुक्त अरब अमीरात, और संयुक्त राज्य अमेरिका। भारतीय संस्कृति की समझ और भारतीय मूल के लोगों के वैश्विक प्रवास के कारण दीवाली मानाने वाले देशों की संख्या तेजीसे बढ़ रही है।

●●●

Light For Life

Dr.Rajeev Tiwari

Diwali, Deepavali or Dipavali is a five day-long (varying as per the bharateeya Calendar) festival of lights, which is celebrated by Hindus, Jains, Sikhs and some Buddhists every autumn in the northern hemisphere (spring in southern hemisphere) One of the most popular festivals of sanaatan sanskriti, Diwali symbolises the spiritual (victory of light over darkness, good over evil and knowledge over ignorance.)

Light is a metaphor for knowledge and consciousness. During the celebration, temples, homes, shops and office buildings are brightly illuminated.The preparations, and rituals, for the festival typically last five days, with the climax occurring on the third day coinciding with the darkest night of the punya month Kartika.

In the lead-up to Diwali, celebrants will prepare by cleaning, renovating, and decorating their homes and

workplaces. During the climax, revellers adorn themselves in their finest clothes, illuminate the interior and exterior of their homes with diyas (oil lamps or candles), offer puja (worship) to Lakshmi, the goddess of prosperity and wealth, light fireworks, and partake in family feasts, where mithai (sweets) and gifts are shared. Diwali is also a major cultural event for the Hindu, Sikh, Jain, and Buddhist diaspora from the Indian subcontinent.

The five-day festival originated in the Indian subcontinent and is mentioned in early Sanskrit texts. Diwali is usually celebrated eighteen days after the Dussehra (Dasara, Dasain) festival, with Dhanteras, or the regional equivalent, marking the first day of the festival when celebrants prepare by cleaning their homes and making decorations on the floor, such as rangoli. The second day is Naraka Chaturdashi, or the regional equivalent which for Hindus in the south of India is Diwali proper. Western, central, eastern and northern Indian communities observe main day of Diwali on the third day i.e. the day of Lakshmi Puja and the darkest night of the traditional month. In some parts of India, the day after Lakshmi Puja is marked with the Govardhan Puja and Balipratipada(Padwa), which is dedicated to the relationship between wife and husband. Some Hindu communities mark the last day as Bhai Dooj or the regional equivalent, which is dedicated to the bond between sister and brother.

Some other faiths in India also celebrate their respective festivals alongside Diwali. The Jains observe their own Diwali, which marks the final liberation of Mahavira, the Sikhs celebrate Bandi Chhor Divas to mark the release of Guru Hargobind from a Mughal Empire prison, while Newar Buddhists, unlike other Buddhists, celebrate Diwali by worshipping Lakshmi, while the Bengali Hindus generally celebrate Diwali, by worshipping Goddess Kali. The main day of the festival of Diwali i.e the day of Lakshmi Puja is an official holiday in Fiji, Guyana, India, Malaysia (except Sarawak),Mauritius, Myanmar,[Nepal, Singapore, Sri Lanka, Suriname, and Trinidad and Tobago.

Divali is from the Sanskrit deepavali meaning (row or series of lights). The conjugated term is derived from the Sanskrit words depa, (lamp, light, lantern, candle, that which glows, shines, illuminates or knowledge) and avali, (a row, range, continuous line, series). After this amaavasya, The new finaancial year satarts. But after emergance of new gragarian calender, all things have been changed. Now, March is finaancial closing month of the new world.The Diwali festival is likely a fusion of harvest festivals in ancient India. It is mentioned in Sanskrit texts such as the Padma Purana, the Skanda Purana .The diyas (lamps) are mentioned in Skanda Kishore Purana as symbolising parts of the sun, describing it as the cosmic giver of light and energy to all life and which seasonally transitions in the Hindu calendar month of Kartik. King Harsha refers to Deepavali, in the 7th century Sanskrit play Nagananda, as Depapratipadotsava (depa = light, pratipada = first day, utsava = festival), where lamps were lit and newly engaged brides and grooms received gifts. Rajasekhara referred to Deepavali as Dipamalika in his 9th century Kavyamimamsa, wherein he mentions the tradition of homes being whitewashed and oil lamps decorated homes, streets and markets in the night.

Diwali was also described by numerous travellers from outside India. In his 11th century memoir on India, the Persian traveller and historian Al Biruni wrote of Deepavali being celebrated by Hindus on the day of the New Moon in the month of Kartika. The Venetian merchant and traveller Niccolò de' Conti visited India in the early 15th-century and wrote in his memoir, "on another of these festivals they fix up within their temples, and on the outside of the roofs, an innumerable number of oil lamps... which are kept burning day and night" and that

the families would gather, "clothe themselves in new garments", sing, dance and feast.The 16th-century Portuguese traveller Domingo Paes wrote of his visit to the Hindu Vijayanagara Empire, where Dipavali was celebrated in October with householders illuminating their homes, and their temples, with lamps.

Publications from the British colonial era also made mention of Diwali, such as the note on Hindu festivals published in 1799 by Sir William Jones, a philologist known for his early observations on Sanskrit and Indo-European languages. In his paper on The Lunar Year of the Hindus, Jones, then based in Bengal, noted four of the five days of Diwali in the autumn months of Aswina-Cartica [sic] as the following: Bhutachaturdasi Yamaterpanam (2nd day), Lacshmipuja dipanwita (the day of Diwali), Dyuta pratipat Belipuja (4th day), and Bhratri dwitiya (5th day). The Lacshmipuja dipanwita, remarked Jones, was a great festival at night, in honor of Lakshmi, with illuminations on trees and houses.

Dhanteras (Day 1)

Dhanteras starts off the Diwali celebrations with the lighting of Diya lamp rows, house cleaning and floor rangoli. Dhanteras, derived from Dhan meaning wealth and teras meaning thirteenth, marks the thirteenth day of the dark fortnight of Kartik and the beginning of Diwali. On this day, many Hindus clean their homes and business premises. They install diyas, small earthen oil-filled lamps that they light up for the next five days, near Lakshmi and Ganesha iconography.

Women and children decorate doorways within homes and offices with rangoli, colourful designs made from rice flour, flower petals and coloured sand,while the boys and men decorate the roofs and walls of family homes, markets, and temples. The day also marks a major shopping day to purchase new utensils, home equipment, jewellery, firecrackers, and other items. On the evening of Dhanteras, families offer prayers (puja) to Lakshmi and Ganesha, and lay offerings of puffed rice, candy toys, rice cakes and batashas (hollow sugar cakes).

Dhanteras is a symbol of annual renewal, cleansing and an auspicious beginning for the next year.The term "Dhan" for this day also alludes to the Ayurvedic icon Dhanvantari, the god of health and healing, who is believed to have emerged from the "churning of cosmic ocean" on the same day as Lakshmi. Some communities, particularly those active in Ayurvedic and health-related professions, pray or perform havan rituals to Dhanvantari on Dhanteras.

Naraka Chaturdashi, Chhoti Diwali (Day 2)

Naraka Chaturdashi also known as Chhoti Diwali, is the second day of festivities coinciding with the fourteenth day of the second fortnight of the lunar month. The term "chhoti" means little, while "Naraka" means hell and "Chaturdashi" means "fourteenth". The day and its rituals are interpreted as ways to liberate any souls from their suffering in "Naraka", or hell, as well as a reminder of spiritual auspiciousness. For some Hindus, it is a day to pray for the peace to the manes, or deified souls of one's ancestors and light their way for their journeys in the cyclic afterlife. A mythological interpretation of this festive day is the destruction of the asura (demon) Narakasura by Krishna, a victory that frees 16,000 imprisoned princesses kidnapped by Narakasura.

Naraka Chaturdashi is also a major day for purchasing festive foods, particularly sweets. A variety of sweets are prepared using flour, semolina, rice, chickpea flour, dry fruit pieces powders or paste, milk solids (mawa or khoya) and clarified butter (ghee).These are then shaped into various forms, such as laddus, barfis, halwa, kachoris, shrikhand, and sandesh,

rolled and stuffed delicacies, such as karanji, shankarpali, maladu, susiyam, pottukadalai. Sometimes these are wrapped with edible silver foil (vark). Confectioners and shops create Diwali-themed decorative displays, selling these in large quantities, which are stocked for home celebrations to welcome guests and as gifts. Families also prepare homemade delicacies for Lakshmi Pujan, regarded as the main day of Diwali. Chhoti Diwali is also a day for visiting friends, business associates and relatives, and exchanging gifts.

This day is commonly celebrated as Diwali in Tamil Nadu, Goa, and Karnataka. Traditionally, Marathi people and South Indian Hindus receive an oil massage from the elders in the family on the day and then take a ritual bath, all before sunrise. Many visit their favourite Hindu temple.

Lakshmi Pujan (Day 3)

The third day is the height of the festival, and coincides with the last day of the dark fortnight of the lunar month. This is the day when Hindu, Jain and Sikh temples and homes are aglow with lights, thereby making it the "festival of lights". The word Deepawali comes from the word the Sanskrit word deep, which means an Indian lantern/lamp.

The youngest members in the family visit their elders, such as grandparents and other senior members of the community, on this day. Small business owners give gifts or special bonus payments to their employees between Dhanteras and Lakshmi Pujan.Shops either do not open or close early on this day allowing employees to enjoy family time. Shopkeepers and small operations perform puja rituals in their office premises. Unlike some other festivals, the Hindu typically do not fast during the five-day long Diwali including Lakshmi Pujan, rather they feast and share the bounties of the season at their workplaces, community centres, temples and homes.Lighting candle and clay lamp in their house and at temples during Diwali night.

The puja and rituals in the Bengali Hindu community focus on Kali, the goddess of war, instead of Lakshmi.According to Rachel Fell McDermott, a scholar of South Asian, particular Bengali, studies, in Bengal during Navaratri (Dussehra elsewhere in India) the Durga puja is the main focus, although in the eastern and north eastern states the two are synonymous, but on Diwali the focus is on the puja dedicated to Kali. These two festivals likely developed in tandem over their recent histories. Textual evidence suggests that Bengali Hindus worshipped Lakshmi before the colonial era, and that the Kali puja is a more recent phenomenon. Contemporary Bengali celebrations mirror those found elsewhere, with teenage boys playing with fireworks and the sharing of festive food with family, but with the Shakti goddess Kali as the focus.

On the night of Laksmi Puja, rituals across much of India are dedicated to Lakshmi to

welcome her into their cleaned homes and bring prosperity and happiness for the coming year. While the cleaning, or painting, of the home is in part for goddess Lakshmi, it also signifies the ritual "reenactment of the cleansing, purifying action of the monsoon rains" that would have

concluded in most of the Indian subcontinent. Vaishnava families recite Hindu legends of the victory of good over evil and the return of hope after despair during the Diwali nights, where the main characters may include Rama, Krishna, Vamana or one of the avatars of Vishnu, the divine husband of Lakshmi. At dusk, lamps placed earlier in the inside and outside of the home are

lit up to welcome Lakshmi. Family members light up firecrackers, which some interpret as a way to ward off all evil spirits and the inauspicious, as well as add to the festive mood.

The celebrations and rituals of the Jains and the Sikhs are similar to those of the Hindus where social and community bonds are renewed. Major temples and homes are decorated with lights, festive foods shared with all, friends and relatives remembered and visited with gifts.

Annakut, Padwa, Govardhan puja (Day 4) Balipratipada

The day after Diwali is the first day of the bright fortnight of the luni-solar calendar. It is regionally called as Annakut (heap of grain), Padwa, Goverdhan puja, Bali Pratipada, Bali Padyami, Kartik Shukla Pratipada and other names. According to one tradition, the day is associated with the story of Bali's defeat at the hands of Vishnu. In another interpretation, it is thought to reference the legend of Parvati and her husband Shiva playing a game of dyuta (dice) on a board of twelve squares and thirty pieces, Parvati wins.

Bhai Duj, Bhao-Beej (Day 5)

The last day of the festival is called Bhai Duj (literally 'brother's day', Bhao Beej, Bhai Tilak or Bhai Phonta. It celebrates the sister-brother bond, similar in spirit to Raksha Bandhan but it is the brother that travels to meet the sister and her family. This festive day is interpreted by some to symbolise Yama's sister Yamuna welcoming Yama with a tilaka, while others interpret it as the arrival of Krishna at his sister's, Subhadra, place after defeating Narakasura. Subhadra welcomes him with a tilaka on his forehead.

The day celebrates the sibling bond between brother and sister. On this day the womenfolk of the family gather, perform a puja with prayers for the well being of their brothers, then return to a ritual of feeding their brothers with their hands and receiving gifts. According to Pintchman, in some Hindu traditions the women recite tales where sisters protect their brothers from enemies that seek to cause him either bodily or spiritual harm. In historic times, this was a day in autumn when brothers would travel to meet their sisters, or invite their sister's family to their village to celebrate their sister-brother bond with the bounty of seasonal harvests.

The artisan Hindu and Sikh community celebrates the fourth day as the Vishwakarma puja day.[note 13] Vishwakarma is the presiding Hindu deity for those in architecture, building, manufacturing, textile work and crafts trades. The looms, tools of trade, machines and workplaces are cleaned and prayers offered to these livelihood means.

Other traditions

During the season of Diwali, numerous rural townships and villages host melas, or fairs, where local producers and artisans trade produce and goods. A variety of entertainments are usually available for inhabitants of the local community to enjoy. The womenfolk, in particular, adorn themselves in colourful attire and decorate their hands with henna. Such events are also mentioned in Sikh historical records.In the modern day, Diwali mela are held at college, or university, campuses or as community events by members of the Indian diaspora. At such events a variety of music, dance and arts performances, food, crafts, and cultural celebrations are featured.

अपूर्वा मानव सेवा संस्थान

महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार
स्वावलम्बन, दिव्यांग कल्याण, पर्यावरण
और स्वच्छता के लिए निरंतर प्रयत्नशील

Wishing you a very
happy and prosperous

Diwali

Head Office Address
4/19, Vivek Khand, Manoj Pandey Chowk, Gomti Nagar,
Lucknow, U.P. - 226010
Phone : 5224060585, +91 9005153664
Branch Office Address
210, 2nd Floor, Netaji Subhash Apartment, Phase-1 Pocket-1,
Sector 13, New Delhi - 110078
Email : apporvamss25@gmail.com
Website : www.apoorvamss.com

मनोज कुमार सिंह
(अध्यक्ष)

भारत संस्कृति न्यास

उद्देश्य

- सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील
- राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत
- प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास
- राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org